प्रातः स्मरणीय पूज्य संत

श्री आशारामजी बापू के

सत्सं-प्रवचनों व सत्साहित्य से संकलित

सत्संग अमृत

सम्पर्कः श्री योग वेदान्त सेवा समिति

संत श्री आशारामजी आश्रम

संत श्री आमारामजी बापू आश्रम मार्ग, महमदाबाद-380005

फोनः 079-27505010-11

आश्रम रोड, जहाँगीरपुरा, सूरत-395005, फोन 0261-2772201-2

वन्दम मातरम् रोड, रवीन्द्र रंगमाला कम सामनम नई दिमली-60

फोनः मेमगाँव (पूर्व), मुंबई-400063, फोन 022-26864143-44

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

मनवमदन

मनुष्य काजन्म धरती पर इसमलए होता हम किवह मपनम आत्मस्वरूप कीपहचान लम और मपनम आत्मिक आनंद कामनुभव करलम। इसी आनंद कीमनुभूमत कमलए वह बाहर भामता फिरता हम। और उसम प्राप्त करनम कमलए जिन-जिन सहारों कोवह हीरा समझकर पकड़ता हम, हाथ में आतम ही वम पत्थर मसद्ध हो जातम हैं।संयोगवमात् ही उसको कोई ऐसा स्थान ममलता हम जो उसकम मयमथत, थकम हुए हृदय कोमांमत और मीतलता कामनुभव कराता पायम और वह स्थान हम 'महापुरुषों कासत्संग'।

सत्संग तार दमता हम, कुसंग डुबो दमता हम। इसमलए आप भी यदि सत्संग में जाओम, मच्छा संग करोम और सदग्रन्थों कामध्ययन करोम तो आपकाचरित्र उमजवल होगाऔर जीवन ऊँचा बनमगा।

श्री हनुमान प्रसाद पोद्दारजी नम कहा हमः 'जिसकोकमपनम जीवन में एकबार भी सच्चम सतं का दर्मन, उपदमम और करस्पर्म कासमभाग्य प्राप्त हो जाता हम, वह परम आनन्द और परम मान्ति कासहज ही ममधकारी हो जाता हम।'

सतं-दर्मन, सतंसमवा और सत्संग काकितना ममोघ फल होता हम, सत्संग सम जीवन को उन्नत बनानम कीकमसी-कमसी कलाएँ सीखनम कोममलती हैं, इसका सुंदर विवमचन प्रातः स्मरणीय विश्ववंदनीय पूमय सतं श्री आमारामजी बापू कीममृतवाणी में बारम्बार आया हम। प्रस्तुत पुस्तक में उस सत्संग-ममृत में सम कुछ प्रमरक प्रसंगों कासंकलन किया गया हम। प्रिय पाठको ! आप सभी इस पावन प्रसाद काबार-बार समवन करकम मवश्य लाभान्वित हों।

श्री योग वेदान्त सेवा समिति, अहमदाबाद।

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

अनुक्रमणिका

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

तीन दुर्लभ चीजें

भगवान शंकराचार्य जी कहते हैं- 'जगत में दुर्लभ क्या है ?'

सदगुरु, सत्संगति और ब्रह्मविचार।

सदगुरु मिल जायें और मनुष्य की अपनी योग्यता न हो तो सदगुरु से ब्रह्मविचार, ब्रह्मचर्चा, ब्रह्मध्यान, परमात्म-साक्षात्कार नहीं कर पायेगा। सदगुरु मिल गये लेकिन अपनी योग्यता नहीं है, तत्परता नहीं है तो मनुष्य उनसे भी ईंट, चूना, लोहा, लक्कड़ आदि संसार की तुच्छ चीजें चाहता है। जिसकी अपनी कुछ आध्यात्मिक कमाई है, अपने कुछ पुण्य हैं वह सदगुरु से सत् तत्त्व की जिज्ञासा करेगा। 'संसार का बंधन कैसे छूटे ? आँख सदा के लिए बंद हो जाये, इन नेत्रों की ज्योति कम हो जाये उसके पहले आत्मज्योति की जगमगाहट कैसे हो ? कुटुम्बीजन मुँह मोड़ लें उसके पहले अपने सर्वेश्वरस्वरूप की मुलाकात कैसे हो ?' - ऐसे प्रश्न करने वाला, आत्मविचार और आत्म-प्यास से भरा हुआ जो साधक है, वही सदगुरु का पूरा लाभ उठाता है। बाकी तो जैसे कोई सम्राट प्रसन्न हो जाय और कोई उससे चना-चिउड़ा और चार पैसे की च्युइंगम-चॉकलेट माँगे, वैसे ही ब्रह्मवेत्ता सदगुरु प्राप्त हो जायें और उनसे संसार की चीजें प्राप्त करके अपने को भाग्यवान मान ले, वह नन्हें-मुन्ने बच्चे जैसा है जो तुच्छ खिलौनों में खुश हो जाता है।

पाताललोक, मृत्युलोक और स्वर्गलोक-इन तीनों लोकों में सदगुरु, सत्संगति और ब्रह्मविचार की प्राप्ति दुर्लभ है। ये तीन चीजें जिसे मिल गयीं, चाहे उसे और कुछ नहीं मिला, फिर भी वह सबसे ज्यादा भाग्यवान है। बाहर की सब चीजें हों, केवल ये तीन चीजें नहीं हों तो भले चार दिन के लिए उसे भाग्यवान मान लो, सामाजिक दृष्टि से उसे बड़ा मान लो लेकिन वास्तव में उसने जीवन का फल नहीं पाया।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

संतसेवा का फल

(पूज्य बापू जी के सत्संग-प्रवचन से)क

तैलंग स्वामी बड़े उच्चकोटि के संत थे। वे 280 साल तक धरती पर रहे। रामकृष्ण परमहंस के उनके काशी में दर्शन किये तो बोलेः "साक्षात् विश्वनाथजी इनके शरीर में निवास करते हैं।" उन्होंने तैलंग स्वामी को 'काशी के सचल विश्वनाथ' नाम से प्रचारित किया।

तैलंग स्वामी जी का जन्म दक्षिण भारत के विजना जिले के होलिया ग्राम में हुआ था। बचपन में उनका नाम शिवराम था। शिवराम का मन अन्य बच्चों की तरह खेलकूद में नहीं लगता था। जब अन्य बच्चे खेल रहे होते तो वे मंदिर के प्रांगण में अकेले चुपचाप बैठकर एकटक आकाश की ओर या शिवलिंग को निहारते रहते। कभी किसी वृक्ष के नीचे बैठे-बैठे ही समाधिस्थ हो जाते। लड़के का रंग-ढंद देखकर माता-पिता को चिंता हुई कि कहीं यह साधु बन गया तो ! उन्होंने उनका विवाह कराने का मन बना लिया। शिवराम को जब

इस बात का पता चला तो वे माँ से बोलेः "माँ ! मैं विवाह नहीं करूँगा, मैं तो साधु बनूँगा। अपने आत्मा की, परमेश्वर की सत्ता का ज्ञान पाऊँगा, सामर्थ्य पाऊँगा। " माता-पिता के अति आग्रह करने पर वे बोलेः "अगर आप लोग मुझे तंग करोगे तो फिर कभी मेरा मुँह नहीं देख सकोगे।"

माँ ने कहाः "बेटा ! मैंने बहुत परिश्रम करके, कितने-कितने संतों की सेवा करके तुझे पाया है। मेरे लाल ! जब तक मैं जिंदा रहूँ तब तक तो मेरे साथ रहो, मैं मर जाऊँ फिर तुम साधु हो जाना। पर इस बात का पता जरूर लगाना कि संत के दर्शन और उनकी सेवा का क्या फल होता है।"

"माँ ! मैं वचन देता हूँ।"

कुछ समय बाद माँ तो चली गयी भगवान के धाम और वे बन गये साधु। काशी में जाकर बड़े-बड़े विद्वानों, संतों से सम्पर्क किया। कई ब्राह्मणों, साधु-संतों से प्रश्न पूछा लेकिन किसी ने ठोस उत्तर नहीं दिया कि संत-सान्निध्य और संत-सेवा का यह-यह फल होता है। यह तो जरूर बताया कि

एक घड़ी आधी घड़ी, आधी में पुनि आध।
तुलसी संगत साध की, हरे कोटि अपराध।।

परंतु यह पता नहीं चला कि पूरा फल क्या होता है। इन्होंने सोचा, 'अब क्या करें ?'

किसी साधु ने कहाः "बंगाल में बर्दवान जिले की कटवा नगरी में गंगाजी के तट पर उद्धारणपुर नाम का एक महाश्मशान है, वहीं रघुनाथ भट्टाचार्य स्मृति ग्रंथ लिख रहे हैं। उनकी स्मृति बहुत तेज है। वे तुम्हारे प्रश्न का जवाब दे सकते हैं।"

अब कहाँ तो काशी और कहाँ बंगाल, फिर भी उधर गये। रघुनाथ भट्टाचार्य ने कहाः "भाई ! संत के दर्शन और उनकी सेवा का क्या फल होता है, यह मैं नहीं बता सकता। हाँ, उसे जानने का उपाय बताता हूँ। तुम नर्मदा किनारे चले जाओ और सात दिन तक मार्कण्डेय चण्डी का सम्पुट करो। सम्पुट खत्म होने से पहले तुम्हारे समक्ष एक महापुरुष और भैरवी उपस्थित होंगे। वे तुम्हारे प्रश्न का उत्तर दे सकते हं।"

शिवरामजी ने वहाँ से नर्मदा-किनारे पहुँचे और अनुष्ठान में लग गये। देखो, भूख होती है तो आदमी परिश्रम करता है और परिश्रम के बाद जो मिलता है न, वह पचता है। अब आप लोगों को ब्रह्मज्ञान की तो भूख है नहीं, ईश्वरप्राप्ति के पुरुषार्थ करना नहीं है तो कितना सत्संग मिलता है, उससे पुण्य तो हो रहा है, फायदा तो हो रहा है लेकिन साक्षात्कार की ऊँचाई नहीं आती। हमको भूख थी तो मिल गया गुरुजी का प्रसाद।

अनुष्ठान का पाँचवाँ दिन हुआ तो भैरवी के साथ एक महापुरुष प्रकट हुए। बोलेः "क्या चाहते हो ?" शिवरामजी प्रणाम करके बोलेः "प्रभु ! मैं यह जानना चाहता हूँ कि संत के दर्शन, सान्निध्य और सेवा का क्या फल होता है ?"

महापुरुष बोलेः "भाई ! यह तो मैं नहीं बता सकता हूँ।"

देखो, यह हिन्दू धर्म की कितनी सच्चाई है ! हिन्दू धर्म में निष्ठा रखने वाला कोई भी गप्प नहीं मारता कि ऐसा है, ऐसा है। काशी में अनेक विद्वान थे, कोई गप्प मार देता ! लेकिन नहीं, सनातन धर्म में सत्य की महिमा है। आता है तो बोलो, नहीं आता तो नहीं बोलो। शिवस्वरूप महापुरुष बोलेः "भैरवी ! तुम्हारे झोले में जो तीन गोलियाँ पड़ी हैं वे इनको दे दो।"

फिर वे शिवरामजी को बोलेः "इस नगर के राजा के यहाँ संतान नहीं है। वह इलाज कर-करके थक गया है। ये तीन गोलियाँ उस राजा की रानी को खिलाने से उसको एक बेटा होगा, भले उसके प्रारब्ध में नहीं है। वही नवजात शिशु तुम्हारे प्रश्न का उत्तर देगा।"

शिवरामजी वे तीन गोलियाँ लेकर चले। नर्मदा किनारे जंगल में आँधी -तूफानों के बीच पेड़ के नीचे सात दिन के उपवास, अनुष्ठान शिवरामजी का शरीर कमजोर पड़ गया था। रास्ते में किसी बनिया की दुकान से कुछ भोजन किया और एक पेड़ के नीचे आराम करने लगे। इतने में एक घसियारा आया। उसने घास का बंडल एक ओर रखा। शिवरामजी को प्रणाम किया, बोलाः "आज की रात्रि यहीं विश्राम करके मैं कल सुबह बाजार में जाऊँगा।"

शिवरामजी बोलेः "हाँ, ठीक है बेटा ! अभी तू जरा पैर दबा दे।"

वह पैर दबाने लगा। शिवरामजी को नींद आ गयी और वे सो गये। घसियारा आधी रात तक उनके पैर दबाता रहा और फिर सो गया। सुबह हुई, शिवरामजी ने उसे पुकारा तो देखा कि वह तो मर गया है। अब उससे सेवा ली है तो उसका अंतिम संस्कार तो करना पड़ेगा। दुकान से लकड़ी आदि लाकर नर्मदा के पावन तट पर उसका क्रियाकर्म कर दिया और नगर में जा पहुँचे।

राजा को संदेशा भेजा कि 'मेरे पास दैवी औषधी है, जिसे खिलाने से रानी को पुत्र होगा।

राजा ने इन्कार कर दिया कि "मैं रानी को पहले ही बहुत सारी औषधियाँ खिलाकर देख चुका हूँ परंतु कोई सफलता नहीं मिली।"

शिवरामजी ने मंत्री से कहाः "राजा को बोलो जब तक संतान नहीं होगी, तब तक मैं तुम्हारे राजमहल के पास रहूँगा।" तब राजा ने शिवरामजी की औषधि ले ली।

शिवरामजी ने कहाः "मेरी एक शर्त है कि पुत्र जन्म लेते ही तुरंत नहला-धुलाकर मेरे सामने लाया जाये। मुझे उससे बातचीत करनी है, इसीलिए तो मैं इतनी मेहनत करके आया हूँ।"

यह बात मंत्री ने राजा को बतायी तो राजा आश्चर्य से बोलाः "नवजात बालक बातचीत करेगा ! चलो देखते हैं।"

रानी को गोलियाँ खिला दीं। दस महीने बाद बालक का जन्म हुआ। जन्म के बाद बालक को स्नान आदि कराया तो वह बच्चा आसन लगाकर ज्ञान मुद्रा में बैठ गया। राजा की खुशी का ठिकाना न रहा। रानी गदगद हो उठी कि "यह कैसा बबलू है कि पैदा होते ही ॐऽऽऽ करने लगा ! ऐसा तो कभी देखा-सुना नहीं।"

सभी लोग चकित हो गये। शिवरामजी के पास खबरें पहुँची। वे आये, उन्हें भी महसूस हुआ कि 'हाँ, अनुष्ठान का चमत्कार तो है !' वे बालक को देखकर प्रसन्न हुए, बोले, "बालक ! मैं तुमसे एक सवाल पूछने आया हूँ कि संत-सान्निध्य और संत सेवा का क्या फल होता है ?"

नवजात शिशु बोलाः "महाराज ! मैं तो एक गरीब, लाचार, मोहताज घसियारा था। आपकी थोड़ी सी सेवा की और उसका फल देखिये, मैंने अभी राजपुत्र होकर जन्म लिया है और पिछले जन्म की बातें सुना रहा हूँ। इसके आगे और क्या-क्या फल होगा, इतना तो मैं नहीं जानता हूँ।।"

ब्रह्म का ज्ञान पाने वाले, ब्रह्म की निष्ठा में रहने वाले महापुरुष बहुत ऊँचे होते हैं परंतु उनसे भी कोई विलक्षण होते हैं कि जो ब्रह्मरस पाया है वह फिर छलकाते भी रहते हैं। ऐसे महापुरुषों के दर्शन, सान्निध्य व सेवा की महिमा तो वह घसियारे से राजपुत्र बना नवजात बबलू बोलने लग गया, फिर भी उनकी महिमा का पूरा वर्णन नहीं कर पाया तो मैं कैसे कर सकता हूँ !

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

परम स्नेही संत

सत्संग से हमें वह रास्ता मिलता है, जिससे हमारा तो उद्धार हो जाता है, हमारे इक्कीस कुलक भी तर जाते हैं।

बिनु सत्संग न हरिकथा ते बिन मोह न भाग।
मोह गये बिनु राम पद, होवहिं न दृढ़ अनुराग।।

सत्संग की जगह पर जाने से, एक-एक कदम रखने से एक-एक यज्ञ करने का फल मिलता है। देवर्षि नारद दासी के पुत्र थे.... विद्याहीन, जातिहीन, धनहीन, कुलहीन और व्यवसायहीन दासी के पुत्र। चतुर्मास में वह दासी साधुओं की सेवा में लगायी गयी थी। साधारण दासी थी। वह साधुओं की सेवा में आती थी तो अपने छोटे बच्चे को भी साथ में ले आती थी। वह बच्चा कीर्तन करता, सत्संग सुनता। साधुओं के प्रति उसकी श्रद्धा हो गयी। उसको कीर्तन, सत्संग, ध्यान का रंग लग गया। उसको आनंद आने लगा। संतों ने नाम रख दिया हरिदास। सत्संग, ध्यान और कीर्तन में उसका चित्त द्रवित होने लगा। जब साधु जा रहे थे तो वह बोलाः "गुरुजी ! मुझे साथ ले चलो।"

संतः "बेटा ! अभी तुझे हम साथ नहीं ले जा सकते। जन्मों-जन्मों का साथी जो हृदय में बैठा है, उसकी भक्ति कर, प्रार्थना कर।"

संतों ने ध्यान-भजन का तरीका सिखा दिया और वही हरिदास आगे चलकर देवर्षि नारद बना। जातिहीन, विद्याहीन, कुलहीन और धनहीन बालक था, वह देवर्षि नारद बन गया। नारदजी को तो देवता भी मानते हैं, मनुष्य भी उनकी बात मानते हैं और राक्षस भी उनकी बात मानते हैं।

कहाँ तो दासी पुत्र ! जातिहीन, विद्याहीन, कुलहीन और कहाँ भगवान को सलाह देने की योग्यता !

ऐसे महान बनने के पीछे नारदजी के जीवन के तीन सोपान थेः

एक सोपान था-सत्संग, साधु समागम।

दूसरा सोपान था-उत्साह।

तीसरा सोपान था-श्रद्धा।

सत्संग, उत्साह और श्रद्धा अगर छोटे से छोटे आदमी में भी हों तो वह बड़े से बड़े कार्य कर सकता है। यहाँ तक कि भगवान भी उसे मान देते हैं। वे लोग धनभागी हैं जिनको सत्संग मिलता है ! वे लोग विशेष धनभागी हैं जो सत्संग दूसरों को दिलाने की सेवा करके संत और समाज के बीच की कड़ी बनने का अवसर खोज लेते हैं, पा लेते हैं और अपना जीवन धन्य कर लेते हैं !

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

महात्मा की कृपा

पूज्य बापू जी के सत्संग-प्रवचन से

बिहार प्रांत की बात हैः

एक लड़के के पिता मर गये थे। वह लड़का करीब 18-19 साल का होगा। उसका नाम था प्रताप। एक बार भोजन करते समय उसने अपनी भाभी से कहाः "भाभी ! जरा नमक दे दे।"

भाभीः "अरे, क्या कभी नमक माँगता है तो कभी सब्जी माँगता है ! इतना बड़ा बैल जैसा हुआ, कमाता तो है नहीं। जाओ, जरा कमाओ, फिर नमक माँगना।"

लड़के के दिल को चोट लग गयी। उसने कहाः "अच्छा भाभी ! कमाऊँगा तभी नमक माँगूगा।"

वह उसी समय उठकर चल दिया। पास में पैसे तो थे नहीं। उसने सुन रखा था कि मुंबई में कमाना आसान है। वह बिहार से ट्रेन में बैठ गया और मुंबई पहुँचा। काम-धंधे के लिए इधर-उधर भटकता रहा परंतु अनजान आदमी को कौन रखे ! आखिर भूख-प्यास से व्याकुल होकर रात में एक शिवमंदिर में पड़ा रहा और भगवान से प्रार्थना करने लगा कि "हे भगवान ! अब तू ही मेरी रक्षा कर।"

दूसरे दिन की सुबह हुई। थोड़ा सा पानी पीकर निकला, दिन भर घूमा परंतु कहीं काम न मिला। रात्रि को पुनः सो गया। दूसरे दिन भी भूखा रहा। ऐसा करते-करते तीसरा दिन हुआ।

हर जीव सच्चिदानंद परमात्मा से जुड़ा है। जैसे शरीर के किसी भी अंग में कोई जंतु काटे तो हाथ तुरंत वहाँ पहुँच जाता है क्योंकि वह अंग शरीर से जुड़ा है, वैसे ही आपका

व्यष्टि श्वास समष्टि से जुड़ा है। उस लड़के के दो दिन तक भूखे-प्यासे रहने परि प्रकृति में उथल-पुथल मच गयी।

तीसरी रात्रि को एक महात्मा आये और बोलेः "बिहारी ! बिहारी ! बेटा, उठ। तू दो दिन से भूखा है। ले, यह मिठाई खा ले। कल सुबह नौकरी भी मिल जायेगी, चिंता मत करना। सब भगवान का मानना, अपना मत मानना।"

महात्मा लँगोटधारी थे। उनका वर्ण काला व कद ठिगना था। लड़के ने मिठाई खायी। उसे नींद आ गयी। सुबह काम की तलाश में निकला तो एक हलवाई ने नौकरी पर रख लिया। लड़के का काम तो अच्छा था, स्वभाव भी अच्छा था। प्रतिदिन वह प्रभु का स्मरण करता और प्रार्थना करता। हलवाई को कोई संतान नहीं थी तो उसने उसी को अपना पुत्र मान लिया। जब हलवाई मर गया तो वही उस दुकान का मालिक बन गया।

अब उसने सोचा कि 'भाभी ने जरा सा नमक तक नहीं दिया था, उसे भी पता चले कि उसका देवर लाखों कमाने वाला हो गया है। ' उसने 5 हजार रूपये का ड्राफ्ट भाभी को भेज दिया ताकि उसको भी पता चले कि साल दो साल में ही वह कितना अमीर हो गया है। तब महात्मा स्वप्न में आये और बोले कि 'तू अपना मानने लग गया ?'

उसने इसे स्वप्न मानकर सुना-अनसुना कर दिया और कुछ समय के बाद फिर से 5000 हजार रूपये का ड्राफ्ट भेजा। उसके बाद वह बुरी तरह से बीमार पड़ गया।

इतने में महात्मा पधारे और बोलेः "तू अपना मानता है ? अपना हक रखता है ? किसलिए तू संसार में आया था और यहाँ क्या करने लग गया ? आयुष्य नष्ट हो रहा है, जीवन तबाह हो रहा है। कर दिया न धोखा ! मैंने कहा था कि अपना मत मानना। तू अपना क्यों मानता है ?"

"गुरुजी ! गल्ती हो गयी। अब आप जो कहेंगे वही करूँगा।"

महात्माः "तीन दिन में दुकान का पूरा सामान गरीब गुरबों को लुटा दे। तू खाली हो जा।"

उसने सब लुटा दिया। तब महात्मा ने कहाः

"चल मेरे साथ।"

महात्मा उसे अपने साथ मुंबई से कटनी ले गये। कटनी के पास लिंगा नामक गाँव है, वहाँ से थोड़ी दूरी पर बैलोर की गुफा है। वहाँ उसको बंद कर दिया और कहाः "बैठ जा, बाहर नहीं आना है। जगत की आसक्ति छोड़ और एकाग्रता कर। एकाग्रता और अनासक्ति-ये दो पाठ पढ़ ले, इसमें सब आ जायेगा।

जब तक ये पाठ पूरे न होंगे, तब तक गुफा का दरवाजा नहीं खुलेगा। इस खिड़की से मैं भोजन रख दिया करूँगा। डिब्बा रखता हूँ, वह शौचालय का काम देगा। उसमें शौच करके रोज बाहर रख दिया करना, सफाई हो जायेगी।"

इस प्रकार वह वर्षों तक भीतर ही रहा। उसका देखना, सुनना, सूँघना, खाना-पीना आदि कम हो गया, आत्मिक बल बढ़ गया, शान्ति बढ़ने लगी। नींद को तो उसने जीत ही

लिया था। इस प्रकार 11 साल हुए तब महात्मा ने जरा सा तात्त्विक उपदेश दिया और दुनिया के सारे वैज्ञानिक और प्रधानमंत्री भी जिस धन से वंचित हैं, ऐसा महाधन पाकर वह बिहारी लड़का महापुरुष बन गया। महात्मा ने कहाः "अब तुम मुक्तात्मा बन गये हो, ब्रह्मज्ञानी बन गये हो। मौज है तो जाओ, विचरण करो।"

तब वे महापुरुष बिहार में अपने गाँव के निकट कुटिया बनाकर रहने लगे। किंतु वे किसी से कुछ न कहते, शांति से बैठे रहते थे। सुबह 6 से 10 बजे तक कुटिया का दरवाजा खुलता। इस बीच वे अपनी कुटिया की झाड़ू बुहारी करते, खाना पकाते, किसी से मिलना-जुलना आदि कर लेते, फिर कुटिया का दरवाजा बंद हो जाता।

वे अपने मीठे वचनों से और मुस्कान से शोक, पाप, ताप हरने वाले, शांति देने वाले हो गये। चार वेद पढ़े हुए लोग भी न समझ न पायें ऐसे ऊँचे अनुभव के वे धनी थे। बड़े-बड़े धनाढ्य, उद्योगपति, विद्वान और बड़े-बड़े महापुरुष उनके दर्शन करके लाभान्वित होते थे।

ब्रह्मनिष्ठ स्वामी अखंडानंदजी सरस्वती, जिनके चरणों में इन्दिरा गांधी की गुरू, माँ आनंदमयी कथा सुनने बैठती थीं, वे भी उनके दर्शन करने के लिए गये थे।

ईश्वर के दर्शन के बाद भी आत्मा-परमात्मा का साक्षात्कार करना बाकी रह जाता है। रामकृष्ण परमहंस, हनुमानजी और अर्जुन को भी ईश्वर के दर्शन करने के बाद भी आत्मसाक्षात्कार करना बाकी था। वह उन्होंने कर लिया था-महात्मा की कृपा, अपने संयम और एकांत से। वह साक्षात्कार उस बिहारी युवक को ही नहीं, देश के किसी भी युवक को हो सकता है। है कोई माई का लाल ?

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

बिना मृत्यु के पुनर्जन्म !

एक चोर ने राजा के महल में चोरी की। सिपाहियों को पता चला तो उन्होंने उसके पदचिह्नों का पीछा किया। पीछा करते-करते वे नगर से बाहर आ गये। पास में एक गाँव था। उन्होंने चोर के पदचिह्न गाँव की ओर जाते देखे। गाँव में जाकर उन्होंने देखा कि एक जगह संत सत्संग कर रहे हैं और बहुत से लोग बैठकर सुन रहे हैं। चोर के पदचिह्न भी उसी ओर जा रहे थे। सिपाहियों को संदेह हुआ कि चोर भी सत्संग में लोगों के बीच बैठा होगा। वे वहीं खड़े रहकर उसका इंतजार करने लगे।

सत्संग में संत कह रहे थे-जो मनुष्य सच्चे हृदय से भगवान की शरण चला जाता है, भगवान उसके सम्पूर्ण पापों को माफ कर देते हैं। 'गीता में भगवान ने कहा हैः

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः।।

'सम्पूर्ण धर्मों को अर्थात् सम्पूर्ण कर्तव्यकर्मों को मुझमें त्यागकर तू केवल एक मुझ सर्वशक्तिमान सर्वाधार परमेश्वर की ही शरण में आ जा। मैं तुझे सम्पूर्ण पापों से मुक्त कर दूँगा, तू शोक मत कर।' (18.66)

वाल्मीकि रामायण (6.18.33) में आता हैः

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम।।

'जो एक बार भी मेरी शरण में आकर 'मैं तुम्हारा हूँ' ऐसा कहकर रक्षा की याचना करता है, उसे मैं सम्पूर्ण प्राणियों से अभय कर देता हूँ - यह मेरा व्रत है।'

इसकी व्याख्या करते हुए संत श्री ने कहाः जो भगवान का हो गया, उसका मानों दूसरा जन्म हो गया। अब वह पापी नहीं रहा, साधु हो गया।

अपिचेत्सुदाराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः।।

'अगर कोई दुराचारी-से-दुराचारी भी अनन्य भक्त होकर मेरा भजन करता है तो उसको साधु ही मानना चाहिए। कारण कि उसने बहुत अच्छी तरह से निश्चय कर लिया है कि परमेश्वर के भजन के समान अन्य कुछ भी नहीं है।' (गीताः9.30)

चोर वहीं बैठा सब सुन रहा था। उस पर सत्संग की बातों का बहुत असर पड़ा। उसने वहीं बैठे-बैठे यह दृढ़ निश्चय कर लिया कि 'अभी से मैं भगवान की शरण लेता हूँ, अब मैं कभी चोरी नहीं करूँगा। मैं भगवान का हो गया।' सत्संग समाप्त हुआ। लोग उठकर बाहर जाने लगे। बाहर राजा के सिपाही चोर की तलाश में थे। चोर बाहर निकला तो सिपाहियों ने उसके पदचिह्नों को पहचान लिया और उसको पकड़ के राजा के सामने पेश किया।

राजा ने चोर से पूछाः "इस महल में तुम्हीं ने चोरी की है न ? सच-सच बताओ, तुमने चुराया धन कहाँ रखा है ?"

चोर ने दृढ़ता पूर्वक कहाः "महाराज ! इस जन्म में मैंने कोई चोरी नहीं की।"

सिपाही बोलाः "महाराज ! यह झूठ बोलता है। हम इसके पदचिह्नों को पहचानते हैं। इसके पदचिह्न चोर के पदचिह्नों से मिलते हैं, इससे साफ सिद्ध होता है कि चोरी इसी ने की है।"

राजा ने चोर की परीक्षा लेने की आज्ञा दी, जिससे पता चले कि वह झूठा है या सच्चा।

चोर के हाथ पर पीपल के ढाई पत्ते रखकर उसको कच्चे सूत से बाँध दिया गया। फिर उसके ऊपर गर्म करके लाल किया हुआ लोहा रखा परंतु उसका हाथ जलना तो दूर रहा, सूत और पत्ते भी नहीं जले। लोहा नीचे जमीन पर रखा तो वह जगह काली हो गयी। राजा ने सोचा कि 'वास्तव में इसने चोरी नहीं की, यह निर्दोष है।'

अब राजा सिपाहियों पर बहुत नाराज हुआ कि "तुम लोगों ने एक निर्दोष पुरुष पर चोरी का आरोप लगाया है। तुम लोगों को दण्ड दिया जायेगा।" यह सुनकर चोर बोलाः "नहीं महाराज ! आप इनको दण्ड न दें। इनका कोई दोष नहीं है। चोरी मैंने ही की थी।"

राजा ने सोचा कि 'यह साधुपुरुष है, इसलिए सिपाहियों को दण्ड से बचाने के लिए चोरी का दोष अपने सिर पर ले रहा है।'

राजा बोलाः "तुम इन पर दया करके इनको बचाने के लिए ऐसा कह रहे हो पर मैं इन्हें दण्ड अवश्य दूँगा।"

चोर बोलाः "महाराज ! मैं झूठ नहीं बोल रहा हूँ, चोरी मैंने ही की थी। अगर आपको विश्वास न हो तो अपने आदमियों को मेरे पास भेजो। मैंने चोरी का धन जंगल में जहाँ छिपा रखा है, वहाँ से लाकर दिखा दूँगा।"

राजा ने अपने आदमियों को चोर के साथ भेजा। चोर उनको वहाँ ले गया जहाँ उसने धन छिपा रखा था और वहाँ से धन लाकर राजा के सामने रख दिया। यह देखकर राजा को बड़ा आश्चर्य हुआ।

राजा बोलाः "अगर तुमने ही चोरी की थी तो परीक्षा करने पर तुम्हारा हाथ क्यों नहीं जला ? तुम्हारा हाथ भी नहीं जला और तुमने चोरी का धन भी लाकर दे दिया, यह बात हमारी समझ में नहीं आ रही है। ठीक-ठीक बताओ, बात क्या है ?"

चोर बोलाः "महाराज ! मैंने चोरी करने के बाद धन को जंगल में छिपा दिया और गाँव में चला गया। वहाँ एक जगह सत्संग हो रहा था। मैं वहाँ जाकर लोगों के बीच बैठ गया। सत्संग में मैंने सुना कि 'जो भगवान की शरण लेकर पुनः पाप न करने का निश्चय कर लेता है, उसको भगवानि सब पापों से मुक्त कर देत हैं। उसका नया जन्म हो जाता है। ' इस बात का मुझ पर असर पड़ा और मैंने दृढ़ निश्चय कर लिया कि 'अब मैं कभी चोरी नहीं करूँगा। अब मैं भगवान का हो लिया कि 'अब मैं कभी चोरी नहीं करूँगा। अब मैं भगवान का हो गया।' इसीलिए तब से मेरा नया जन्म हो गया। इस जन्म में मैंने कोई चोरी नहीं की, इसलिए मेरा हाथ नहीं जला। आपके महल में मैंने जो चोरी की थी, वह तो पिछले मैंने जन्म में की थी।"

कैसा दिव्य प्रभाव है सत्संग का ! मात्र कुछ क्षण के सत्संग ने चोर का जीवन ही पलट दिया। उसे सही समझ देकर पुण्यात्मा, धर्मात्मा बना दिया। चोर सत्संग-वचनों में दृढ़ निष्ठा से कठोर परीक्षा में भी सफल हो गया और उसका जीवन बदल गया। राजा उससे प्रभावित हुआ, प्रजा से भी वह सम्मानित हुआ और प्रभु के रास्ते चलकर प्रभुकृपा से उसने परम पद को भी पा लिया। सत्संग पापी से पापी व्यक्ति को भी पुण्यात्मा बना देता है। जीवन में सत्संग नहीं होगा तो आदमी कुसंग जरूर करेगा। कुसंगी व्यक्ति कुकर्म कर अपने को पतन के गर्त में गिरा देता है लेकिन सत्संग व्यक्ति को तार देता है, महान बना देता है। ऐसी महान ताकत है सत्संग में !

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

संतकृपा के चमत्कार

सौराष्ट्र (गुज.) की भूमि के सुप्रसिद्ध कविरत्न हो गये 'दुला काग'। वि.सं. 1958 के कार्तिक मास की एकादशी तिथि को मोडवदरी गाँव में उनका जन्म हुआ। उनकी माता का नाम आई धानबाई तथा पिता का नाम भाया काग था।

विचारशीलता, मित्तभाषिता एवं एकांतप्रियता-ये सदगुण दुला के जीवन में बचपन से ही देखे गये। पाँचवीं कक्षा के बाद दुला ने पढ़ाई छोड़ दी। सुबह-सुबह वह गायों को लेकर निकल जाता। गायें चर रही होतीं तो वह नदी में स्नान कर आता, फिर पेड़ की छाँव में बैठकर अपनी छोटी-सी गठरी में बाँधी हुई गणपतिजी के मूर्ति निकालता और उसकी पूजा करता, नामजप करता और मुग्ध मन से प्रार्थना करता कि 'हे गणपति देव ! मुझे तीव्र बुद्धि दो।' फिर रामायण के दोहे-चौपाइयाँ बड़े चाव से गाता। एक समय भोजन करता और फिर से भजन में लग जाता।

दुला के पिता का जगत इससे बिल्कुल अलग था। वे जागीरदार थे और व्यवहार में रचे पचे रहते थे। अतः वे दुला को भजन करते देखते तो बड़े नाराज होते परंतु दुला अपने नियम में दृढ़ रहता।

समय बीतता गया। पौष मास की त्रयोदशी तिथि थी। दोपहर की तपती धूप में दुला स्नान करके आ ही रहा था कि एक तेजस्वी महात्मा उसके निकट आकर खड़े हो गये और बोलेः "बालक ! क्या तुझे कविता सीखनी है ?"

"हाँ।"

"मेरे साथ चलेगा ?"

"ऐसे नहीं आ सकता। मेरे पिता जी को पता चलेगा तो मुझे मारेंगे और ये गायें भी बिना मेरे वापस नहीं जायेंगी।"

"बच्चे ! अगर गायें चराने के लिए तेरे पिताजी को कोई बढ़िया ग्वाला मिल जाये और वे खुद तुझे मुझको सौंप दें, तब तो तू मेरे पास आयेगा न ?"

"फिर तो बहुत अच्छा होगा।"

संत चले गये। दुला जब घर पहुँचा तो उसने देखा कि पिताजी से कोई ग्वाला काम माँगने आया है और वे उससे बातें कर रहे हैं। यह देखकर दुला के आश्चर्य का ठिकाना न रहा ! उसे महात्मा के वचन याद आये। उसने सोचा कि यह सब उन संतपुरुष के संकल्प से ही हो रहा है।

दुला को देखकर भाया काग ने कहाः "क्यों, अब गया चराना छोड़ना है न ? आश्चर्य है ! रजवाड़े का कारोबार छोड़कर बेटा गायें चराने में लगा है।"

दुला ने हामी भर दी। गायें चराने का काम उस ग्वाले को सौंप दिया गया। दुला तो स्नानादि करके पूजा में बैठ गया। जिस कमरे में वह ध्यान-भजन करता था उसी में उसके पिताजी की तलवार रखी हुई थी। भाया काग तलवार लेने आये तो दुला को जागीर का कारोबार सँभालने के बजाय गणेष जी की पूजा करते देखकर नाराज हो गये और बोलेः "चल मेरे साथ ! पीपावाव गाँव के महाराज गीगारामजी मेरे मित्र हैं। उनके यहाँ मुक्तानंद जी नाम के एक प्रसिद्ध संत आये हैं। मैं तुझे उनके हवाले कर आता हूँ, फिर वहीं बैठकर तू माला जपते रहना।"

भाया काग ने उसे ले जाकर मुक्तानंदजी महाराज के चरणों में अर्पण कर दिया। दुला संत मुक्तानंदजी महाराज के चरणों में अर्पण कर दिया। दुला संत मुक्तानंदजी के सान्निध्य में पलने-बढ़ने लगा। धीरे-धीरे उसे विचार सागर, पंचदशी, श्रीमद् भगवद् गीता आदि सत्शास्त्र कंठस्थ होने लगे। एक दिन दुला ने गुरुजी से कहाः "गुरुजी ! मैं भुज जाना चाहता हूँ। सुना है कि वहाँ के पंडित की पाठशाला में कवि परिपक्व होते हैं।"

मुक्तानंद जी बोलेः "यहीं भुज है और यहीं पाठशाला है। भुज नहीं जाना है। " ऐसा कहते हुए उन्होंने अपने हाथ के पंजे दुला के पंजों से मिला दिये, घुटने से घुटने सटा दिये और एकटक देखते हुए दुला पर शक्तिपात किया। फिर उसकी आँखों पर हाथ फेरते हुए बोलेः "जा बेटा ! सवैया लिखकर ले आ।"

दुला ने कलम उठायी और संतकृपा से दुला की लेखनी ऐसी चली कि वे एक भक्तकवि के रूप में सुप्रसिद्ध हो गये। दुला काग की प्रथम रचना इस प्रकार की थीः

दौड़त है मृग, ढूँढत जंगल, बंद सुगंध कहाँ बन आसे?
जानत ना मम नाभि में है बंद, त्यूँ ही बिचारी मन मृग यासे?
क्यों त्यों नर शठ रहे हरि खोजत, भ्रम थकी चित्त ज्ञान न त्रासे।
'काग' कहे ये गुरु मुक्तानंद, आप ही आतमज्ञान प्रकाशे।।

भावार्थः कस्तूरी नाभि में होते हुए भी मृग सुगंध को बाहर ढूँढता फिरता है। वह यह नहीं जानता की सुगंध जिससे आ रही है वह कस्तूरी उसकी अपनी नाभि में ही बंद है।

हे मन ! तू विचार कर कि क्या तेरी स्थिति उस मृग जैसी नहीं है ? गुरु मुक्तानन्द कहते हैं कि हे चतुर मनुष्य ! तू अपनी चतुराई के बल पर हरि को कितना भी खोजता फिर, कितना भी कष्ट सहन कर परंतु चित्त में भ्रम बना रहने से ज्ञान का प्रकाश नहीं होगा। तू अपनी चतुराई छोड़ तो आत्मा का ज्ञान अपने आप तेरे चित्त में प्रकाशित होगा।

26 जनवरी सन् 1962 को गणतन्त्र दिवस पर भारत सरकार ने उन्हें काव्य-रचना के क्षेत्र में 'पद्मश्री' की उपाधि से अलंकृत किया। इस प्रकार गाय चराने वाला बालक संत का संग पाकर आध्यात्मिक ऊँचाइयों को उपलब्ध हुआ, अमर यश का भागी हुआ।

संत की कृपा नर कि नारायण पद में प्रतिष्ठित करने का सामर्थ्य रखती है। ऐसे महापुरुषों से समाज को लाभ उठाना चाहिए। उनके सत्संग-सान्निध्य से अपने जीवन को सँवार लेना चाहिए।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

तमाचे की करामात

पूज्य बापू जी के सत्संग-प्रवचन से

मुंबई के नजदीक गणेशपुरी है। गणेशपुरी, वज्रेश्वरी में नाना औलिया नाम के एक महापुरुष रहा करते थे। वे मुक्तानंदजी के आश्रम के नजदीक की सड़क पर मैले कुचैले कपड़े

पहने पड़े रहते थे अपनी निजानंद की मस्ती में। वे दिखने में तो सादे-सूदे थे पर बड़ी ऊँची पहुँच के धनी थे।

उस समय घोड़ागाड़ी चलती थी, ऑटोरिक्शा गिने गिनाये होते थे। एक बार एक डिप्टी कलेक्टर (उपजिलाधीश) घोड़ागाड़ी पर कहीं जा रहा था। रास्ते में बीच सड़क पर नाना औलिया टाँग पर टाँग चढ़ाये बैठे थे।

कलेक्टर ने गाड़ीवान को कहाः "हॉर्न बजा, इस भिखारी को हटा दे।"

गाड़ीवान बोलाः "नहीं, ये तो नाना बाबा हैं ! मैं इनको नहीं हटाऊँगा।"

कलेक्टरः "अरे ! क्यों नहीं हटायेगा, सड़क क्या इसके बाप की है ?" वह गाड़ी से उतरा और नाना बाबा को डाँटने लगाः "तुम सड़क के बीच बैठे हो, तुमको अच्छा लगता है ? शर्म नहीं आती ?" बाबा दिखने में दुबले पतले थे लेकिन उनमें ऐसा जोश आया कि उठकर खड़े हुए और उस कलेक्टर का कान पकड़कर धड़ाक से एक ने तमाचा जड़ दिया। आस पास के सभी लोग देख रहे थे कि नाना बाबा ने कलेक्टर को तमाचा मार दिया। अब तो पुलिस नाना बाबा का बहुत बुरा हाल करेगी।

लेकिन ऐसा सुहावना हाल हुआ कि 'साधूनां दर्शनं लोके सर्वसिद्धकरं परम्।' की तरह 'साधूनां थप्पड़ं सर्वसिद्धिकरं परं... महापातकनाशनं... परं विवेकं जागृतम्' पंजा मार दिया तो उसके पाँचों विकारों का प्रभाव कम हो गया। कलेक्टर ने सिर नीचे करके दबी आवाज में गाड़ीवान को कहाः "गाड़ी वापस लो।" जहाँ ऑडिट करने जा रहा था वहाँ न जाकर वापस गया अपने दफ्तर में और त्यागपत्र लिखा। सोचा, "अब यह बंदों की गुलामी नहीं करनी है। संसार की चीजों को इकट्ठा कर-करके छोड़कर नहीं मरना है, अपनि अमर आत्मा की जागृति करनी है। मैं आज से सरकारी नौकरी को सदा के लिए ठुकराता हूँ और अब असली खजाना पाने के लिए जीवन जीऊँगा।' बन गये फकीर एक थप्पड़ से।

कहाँ तो एक भोगी डिप्टी कलेक्टर और नाना साहब औलिया का तमाचा लगा तो ईश्वर के रास्ते चलकर बन गया सिद्धपुरुष !

तुम में से भी कोई चल पड़े ईश्वर के रास्ते, हो जाय सिद्धपुरुष ! नानासाहब ने एक ही थप्पड़ मारा और कलेक्टर ने अपना काम बना लिया। अब मैं क्या करूँ ? थप्पड़ से तुम्हारा काम होता हो तो मैं उसके लिए भी तैयार हूँ और कहानी-कथा, सत्संग सुनाने से तुम्हारा काम होता हो तो भी मैं तैयार हूँ लेकिन तुम अपना काम बनाने का इरादा कर लो। लग जाय तो एक वचन भी लग जाता है।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

संत की युक्ति से मुक्ति

भगवान का नाम कैसे भी, किसी भी उद्देश्य से जपा जाय कल्याण करने वाला ही होता है।

तुलसी अपने राम को रीझ भजो या खीझ।

भूमि फेंके उगेंगे उलटे सीधे बीज।।

अजामिल (श्रीमद् भागवत में जिनका-वृतांत आता है), महर्षि वाल्मीकिजी तथा अन्य कई नामी-अनामी भक्त एवं महापुरुष हैं, जो भगवन्नाम-जप के प्रताप से महानति को प्राप्त हो गये, भवसागर से तर गये।

दक्षिण भारत में 'ज्ञान सम्बंधम्' नाम के एक विवेकशील पुरुष थे। उनकी पत्नी का नाम था 'नमः शिवायम्'। नमः शिवायम् का देहान्त होने पर ज्ञान सम्बंधम् एक उच्चकोटि के आत्मानुभवी संत के पास जाकर बोलेः "महाराज ! संसार में मेरा कोई नहीं रहा। अब मैं परमात्मा का चिंतन करूँगा।"

संत ने उन्हें भगवद् ध्यान-चिंतन के बारे में मार्गदर्शन दिया परंतु जब वे ध्यानि करने बैठते तो उन्हें अपनी पत्नी की याद आ जाती है। वे पुनः संत के पास गये और बोलेः "मुझसे परमात्मा का चिंतन नहीं होता, पत्नी का ही चिंतन होता है। " महात्मा ने पूछाः "तुम्हारि धर्मपत्नी का नाम क्या था ?" ज्ञान सम्बंधम् बोलेः "नमः शिवायम्।"

संतप्रवर ने कहाः "बहुत बढ़िया ! अब तुम अपनी पत्नी का ही नाम जपा करो - "नमः शिवायम्।"

संत की आज्ञा शिरोधार्य करके उन्होंने इसी नाम का जप शुरू कर दिया। नमः शिवायम् - भगवान शिव का मंत्र होने से ज्ञान सम्बंधम् की मति पवित्र व सूक्ष्म होती गयी और धीरे धीरे वे आत्मस्वरूप के तात्त्विक ज्ञान, तत्त्वचिंतन के अधिकारी हो गये। कुछ समय बीतने पर वे संत के पास आकर बोलेः "वह तो मुर्दा हो गयी, अब उसका नाम क्यों लें ?"

संत ने कहाः "शरीर मुर्दा हुआ, उसमें जो प्राण थे, मन था वह तो मुर्दा हुआ नहीं।"

ज्ञान सम्बंधम् वापस गये और ध्यान में बैठ गये। अब वे विचारने लगे कि 'प्राण तो जड़ हैं व मन चंचल है, उनको छोड़ो।'

ज्ञानमार्ग परमात्मप्राप्ति का विहंग मार्ग कहलाता है। ब्रह्मनिष्ठ संत का सत्संग-मार्गदर्शन व उसके अनुसार मनन-चिंतन का सिलसिला चलता रहा और बहुत ही कम समय में ज्ञान सम्बंधम् ने आत्मस्वरूप का ज्ञान प्राप्त कर लिया। ईश्वर के दर्शन के बाद भी आत्मस्वरूप का ज्ञान प्राप्त करना बाकी रह जाता है।

हनुमानजी को भगवान श्रीरामचन्द्र जी के दर्शन के बाद भी जो पाना बाकी था, अर्जुन को भगवान श्रीकृष्ण के दर्शन के बाद भी जो पाना बाकी था, नामदेव को विट्ठल के दर्शन के बाद भी जो पाना बाकी था, वह सर्वोपरि ज्ञान उन्होंने पाया। ब्रह्मज्ञान सर्वोपरि है।

श्रीकृष्ण ने उद्धव को एकांत में जाकर ब्रह्मस्थिति करने को कहा था। वह सर्वोपरि स्थिति उन्होंने प्राप्त कर ली। संतों के पास कैसी-कैसी युक्तियाँ होती है जीवों को भवसागर स तारने की ! और कितनी महिमा है भगवन्नाम व तत्त्वचिंतन की ! भले 'नमः शिवायम्' पत्नी का नाम था किंतु भगवन्नाम अपना काम करता ही है। धन्यवाद है उन अभिभावकों को जो अपने बच्चों के नामकरण के समय भगवान के नामों का ही अवलम्बन लेते हैं ! जिन अभिभावकों ने अपने बच्चों के नाम टीनू, मीनू, पिंकी, चिंकी, श्लेष्मा ह्र इस प्रकार रखे हैं,

उन्हें हम प्रार्थना करते हैं कि वे अजामिल, ज्ञान सम्बंधम् की कथा से प्रेरणा लेकर अपने बच्चों का नाम नारायण, हरि, शिव, कृष्ण, राम, हरिदास, गोविद, सरस्वती, दुर्गा ह इस प्रकार रखें। चिंता न करें कि नाम कम पड़ जायेंगे। भारत के ऋषियों ने भी विष्णुसहस्रनाम, श्री शिवसहस्रनाम आदि की रचना करके आपके लिए भगवन्नामों का वैविध्यपूर्ण भंडार खोल रखा है अपने सत्शास्त्रों में। और नाम भी ऐसे कि एक-एक नाम भगवान के एक-एक अदभुत गुण का वाचक ! श्री विष्णुसहस्रनाम में भगवान के हजार नाम हैं, उनमें से नाम रखें। कैसी सुंदर व्यवस्था है ! तो आप इसका लाभ लें और अपनी वाणी को पावन व मन बुद्धि को सदगुणसम्पन्न, भगवन्मय बनायें।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

सत्संग से सुखमय परिवार

एक पिता-पुत्र व्यापार धंधा करते थे। पुत्र को पिता के साथ कार्य करते हुए वर्षों बीत गये, उसकी उम्र भी चालीस को छूने लगी। फिर भी पुत्र को पिता न तो व्यापार की स्वतन्त्रता देते थे और न ही तिजोरी की चाबी। पुत्र के मन में सदैव यह बात खटकती। वह सोचता, "यदि पिता जी का यही व्यवहार रहा तो मुझे व्यापार में कुछ नया करने का कोई अवसर नहीं मिलेगा।' पुत्र के मन में छुपा क्षोभ एक दिन फूट पड़ा। दोनों के बीच झगड़ा हुआ और सम्पदा का बँटवारा हो गया। पिता पुत्र दोनों अलग हो गये। पुत्र अपनी पत्नी, बच्चों के साथ रहने लगा। पिता अकेले थे, उनकी पत्नी का देहांत हो चुका था। उन्होंने किसी दूसरे को सेवा के लिए नहीं रखा क्योंकि उन्हें किसी पर विश्वास नहीं था। वे स्वयं ही रूख-सूखा भोजन बनाकर खा लेते या कभी चने आदि खाकर ही रह जाते तो कभी भूखे ही सो जाते थे।

उनकी पुत्रवधु बचपन से ही सत्संगी थी। जब उसने अपने श्वसुर की ऐसी हालत का पता चला तो उसे बड़ा दुःख हुआ, आत्मग्लानि भी हुई। उसमें बाल्यकाल से ही धर्म के संस्कार थे, बड़ों के प्रति आदर व सेवा का भाव था। उसने अपने पति को मनाने का प्रयास किया परंतु वे न माने। पिता के प्रति पुत्र के मन में सदभाव नहीं था। अब पुत्रवधु ने एक विचार अपने मन में दृढ़ कर उसे कार्यान्वित किया। वह पहले पति व पुत्र को भोजन कराकर क्रमशः दुकान और विद्यालय भेज देती, बाद में स्वयं श्वसुर के घर जाती। भोजन बनाकर उन्हें खिलाती और रात्रि के लिए भी भोजन बनाकर रख देती। कुछ दिनों तक ऐसा ही चलता रहा। जब उसके पति को पता चला तो उसने पत्नी को ऐसा करने से रोकते हुए कहाः "ऐसा क्यों करती हो ? बीमार पड़ जाओगी। तुम्हारा शरीर इतना परिश्रम नहीं सह पायेगा। " पत्नी बोली "मेरे आदरणीय श्वसुर जी भूखे रहें तकलीफ पायें और हम लोग आराम से खायें-पियें, यह मैं नहीं देख सकती। मेरा धर्म है बड़ों की सेवा करना, इसके बिना मुझे संतोष नहीं होता। उनमें भी तो मेरे भगवान का वास है। मैं उन्हें खिलाये बिना नहीं खा सकती। भोजन के समय उनकी याद आने पर मेरी आँखों में आँसू आ जाते हैं। उन्होंने ही तो आपको पाल-पोसकर

बड़ा किया है, तभी आप मुझे पति के रूप में मिले हैं। आपके मन में कृतज्ञता का भाव नहीं है तो क्या हुआ, मैं उनके प्रति कैसे कृतघ्न कैसे हो सकती हूँ !"

पत्नी के सुंदर संस्कारों ने, सदभाव ने पति की बुद्धि पलट दी। उन्होंने जाकर अपने पिता के चरण छुए, क्षमा माँगी और उन्हें अपने घर ले आये। पति पत्नी दोनों मिलकर पिता की सेवा करने लगे। पिता ने व्यापार का सारा भार पुत्र पर छोड़ दिया। परिवार के किसी भी व्यक्ति में सच्चा सदभाव है, मानवीय संवेदनाएँ हैं, सुसंस्कार हैं तो वह सबके मन को जोड़ सकता है, घर-परिवार में सुख शांति बनी रह सकती है। और यह तभी सम्भव है जब जीवन में सत्संग हो, भारतीय संस्कृति के उच्च संस्कार हों, धर्म का सेवन हो। जीवन का ऐसा कौन-सा क्षेत्र है जहाँ सत्संग की आवश्कता नहीं है ! सत्संग जीवन की अत्यावश्यक माँग है क्योंकि सच्चा सुख जीवन की माँग है और वह सत्संग से ही मिल सकता है।

सो जानब सतसंग प्रभाऊ। लोकहूँ बेद न आन उपाऊ।।

(श्रीरामचरित.बा.कां. 2.3)

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

ऊँची समझ

(पूज्य बापू जी के सत्संग-प्रवचन से)

एक संत के पास बहरा आदमी सत्संग सुनने आता था। उसे कान तो थे पर वे नाड़ियों से जुड़े नहीं थे। एकदम बहरा, एक शब्द भी सुन नहीं सकता था। किसी ने संतश्री से कहाः

"बाबा जी ! वे जो वृद्ध बैठे हैं, वे कथा सुनते-सुनते हँसते तो हैं पर वे बहरे हैं।"

बहरे मुख्यतः दो बार हँसते हैं - एक तो कथा सुनते-सुनते जब सभी हँसते हैं तब और दूसरा, अनुमान करके बात समझते हैं तब अकेले हँसते हैं।

बाबा जी ने कहाः "जब बहरा है तो कथा सुनने क्यों आता है ? रोज एकदम समय पर पहुँच जाता है। चालू कथा से उठकर चला जाय ऐसा भी नहीं है, घंटों बैठा रहता है।"

बाबाजी सोचने लगे, "बहरा होगा तो कथा सुनता नहीं होगा और कथा नहीं सुनता होगा तो रस नहीं आता होगा। रस नहीं आता होगा तो यहाँ बैठना भी नहीं चाहिए, उठकर चले जाना चाहिए। यह जाता भी नहीं है !"

बाबाजी ने उस वृद्ध को बुलाया और उसके कान के पास ऊँची आवाज में कहाः "कथा सुनाई पड़ती है ?"

उसने कहाः "क्या बोले महाराज ?"

बाबाजी ने आवाज और ऊँची करके पूछाः "मैं जो कहता हूँ, क्या वह सुनाई पड़ता है ?"

उसने कहाः "क्या बोले महाराज ?"

बाबाजी समझ गये कि यह नितांत बहरा है। बाबाजी ने सेवक से कागज कलम मँगाया और लिखकर पूछा।

वृद्ध ने कहाः "मेरे कान पूरी तरह से खराब हैं। मैं एक भी शब्द नहीं सुन सकता हूँ।"

कागज कलम से प्रश्नोत्तर शुरू हो गया।

"फिर तुम सत्संग में क्यों आते हो ?"

"बाबाजी ! सुन तो नहीं सकता हूँ लेकिन यह तो समझता हूँ कि ईश्वरप्राप्त महापुरुष जब बोलते हैं तो पहले परमात्मा में डुबकी मारते हैं। संसारी आदमी बोलता है तो उसकी वाणी मन व बुद्धि को छूकर आती है लेकिन ब्रह्मज्ञानी संत जब बोलते हैं तो उनकी वाणी आत्मा को छूकर आती हैं। मैं आपकी अमृतवाणी तो नहीं सुन पाता हूँ पर उसके आंदोलन मेरे शरीर को स्पर्श करते हैं। दूसरी बात, आपकी अमृतवाणी सुनने के लिए जो पुण्यात्मा लोग आते हैं उनके बीच बैठने का पुण्य भी मुझे प्राप्त होता है।"

बाबा जी ने देखा कि ये तो ऊँची समझ के धनी हैं। उन्होंने कहाः "आप दो बार हँसना, आपको अधिकार है किंतु मैं यह जानना चाहता हूँ कि आप रोज सत्संग में समय पर पहुँच जाते हैं और आगे बैठते हैं, ऐसा क्यों ?"

"मैं परिवार में सबसे बड़ा हूँ। बड़े जैसा करते हैं वैसा ही छोटे भी करते हैं। मैं सत्संग में आने लगा तो मेरा बड़ा लड़का भी इधर आने लगा। शुरुआत में कभी-कभी मैं बहाना बना के उसे ले आता था। मैं उसे ले आया तो वह अपनी पत्नी को यहाँ ले आया, पत्नी बच्चों को ले आयी - सारा कुटुम्ब सत्संग में आने लगा, कुटुम्ब को संस्कार मिल गये।"

ब्रह्मचर्चा, आत्मज्ञान का सत्संग ऐसा है कि यह समझ में नहीं आये तो क्या, सुनाई नहीं देता हो तो भी इसमें शामिल होने मात्र से इतना पुण्य होता है कि व्यक्ति के जन्मों-जन्मों के पाप-ताप मिटने एवं एकाग्रतापूर्वक सुनकर इसका मनन-निदिध्यासन करे उसके परम कल्याण में संशय ही क्या !

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

नाव पानी में रहे, पानी नाव में नहीं.....

पूज्य बापू जी

सुबह नींद में से उठ के श्वास गिनो और शांत हो जाओ। अपने परमात्मा में, आत्मा मे ही खुश रहना। 'मेरा पैसा कहाँ है ? मेरा छोरा कहाँ है ?' नश्वर दुनिया की चीजों की क्या इच्छा करना ! 'मैं अमर आत्मा हूँ। शरीर मरेगा, मैं तो अपने-आप में मस्त हूँ। मुझे मारे ऐसी कोई तलवार नहीं, कोई मौत नहीं। अमर आत्मा के आगे तो मौत की मौत हो जाये। मैं तो अमर आत्मा हूँ। ॐ....हरिॐ....ॐ.... ' - इस प्रकार अमर आत्मा का विचार करे तो अमर आत्मा को पायेगा और बेट-बेटी का विचार करे, नाती-पोते का विचार करे तो अंत में उन्हीं की याद आयेगी और वहीं जन्मेगा।

भगवान ने गीता में कहा हैः

यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्।
तं तमेवैति कौन्तेय सदा तदभावभावितः।।

' हे कुन्तीपुत्र अर्जुन ! यह मनुष्य अंतकाल में जिस-जिस भी भाव का स्मरण करता हुआ शरीर का त्याग करता है, उस उस को ही प्राप्त होता है क्योंकि वह सदा उसी भाव से भावित रहा है।' (8.6)

एक बार संत कबीर जी ने एक किसान से कहाः "तुम सत्संग में आया करो।"

किसान बोलाः "हाँ महाराज ! मेरे लड़के की सगाई हो गयी है, शादी हो जाये फिर आऊँगा।"

लड़के की शादी हो गयी। कबीर जी बोलेः "अब तो आओ।"

"मेहमान आते जाते हैं। महाराज ! थोड़े दिन बाद आऊँगा।"

ऐसे दो साल बीत गये। बोलेः "अब तो आओ।"

"महाराज ! मेरी बहू है न, वह माँ बनने वाली है। मेरा छोरा बाप बनने वाला है। मैं दादा बनने वाला हूँ। घर में पोता आ जाय, फिर कथा में आऊँगा।"

पोता हुआ। "अब तो सत्संग में आओ।"

"अरे महाराज ! आप मेरे पीछे क्यों पड़े हैं ? दूसरे नहीं मिलते हैं क्या ?"

कबीर जी ने हाथ जोड़ लिये। कुछ वर्ष के बाद कबीरजी फिर गये, देखा कि कहाँ गया वह खेतवाला ? दुकानें भी थीं, खेत भी था। लोग बोलेः "वह तो मर गया !"

"मर गया।"

"हाँ।"

मरते-मरते वह सोच रहा था कि 'मेरे खेत का क्या होगा, दुकान का क्या होगा ?' कबीर जी ने ध्यान लगा के देखा कि दुकान में चूहा बना है कि खेत में बैल बना है ? देखा कि अरहट में बँधा है, बैल बन गया है। उसके पहले हल में जुता था, फिर गाड़ी में जुता। अब बूढ़ा हो गया है। कबीर जी थोड़े-थोड़े दिन में आते जाते रहे। फिर उस बूढ़े बैल को, अब काम नहीं करता इसलिए तेली के पास बेच दिया गया। तेली ने भी काम लिया फिर बेच दिया कसाई को और कसाई ने 'बिस्मिल्लाह !' करके छुरा फिरा दिया। चमड़ा उतार के नगाड़ेवाला को बेच दिया और टुकड़े-टुकड़े कर के मांस बेच दिया।

कबीर जी ने साखी बनायीः

कथा में तो आया नहीं, मरकर

बैल बने हल में जुते, ले गाड़ी में दीन।

हल नहीं खींच सका तो गाड़ी, छकड़े को खींचने में लगा दिया।

तेली के कोल्हू रहे, पुनि घर कसाई लीन।
मांस कटा बोटी बिकी, चमड़न मढ़ी नगार।
कुछ एक कर्म बाकी रहे, तिस पर पड़ती मार।।

नगारे पर डंडे पड़ रहे हैं। अभी कर्म बाकी हैंतो उसे डंडे पड़ रहे हैं। मेरा बेटा कहाँ है ? मेरी बेटी कहाँ है ?....' डंडे पड़ेंगे फिर। 'मेरा परमात्मा कहाँ है ? अमर आत्मा कहाँ है ? यह तो मरने वाला शरीर मर रहा है, सपने जैसा है। कई बेटे-बेटी सपना हो गये, संसार सपना हो रहा है लेकिन जो बचपन में मेरे साथ था, शादी में साथ था, बुढ़ापे में साथ है, मरने के बाद भी जो साथ नहीं छोड़ेगा वह मेरा प्रभु आत्मा कैसा है ? ॐ आनंद.... ॐ शांति...' - ऐसा करके उस आत्मा को जाने तो मुक्त हो जाये और 'छोरे क्या क्या होगा ? खेती का क्या होगा ?' किया तो बैल बनो बेटा ! जाओ।

इसलिए मन को संसार में नहीं लगाना। नाव पानी में रहे लेकिन पानी नाव में नहीं रहे। शरीर संसार में रहे किंतु अपने दिमाग में संसार नहीं घुसे। अपने दिमाग में तो 'ॐ आनन्द... ॐ शांति.... ॐ माधुर्य... संसार सपना, परमात्मा अपना....' - ऐसा चिंतन चलता रहे। चिंतन करके निश्चिंत नारायण में विश्रान्ति पायें, निश्चिंत नारायण-व्यापक ब्रह्म में आयें।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

सत्संग की महिमा

एक बार देवर्षि नारद भगवान विष्णु के पास गये और प्रणाम करते हुए नम्र वचन बोलेः "हे लक्ष्मीपते, हे कमलनयन ! कृपा करके इस दास को सत्संग की महिमा सुनाइये।"

जगत्पति ने मंद-मंद मुस्कराते हुए अपनी मधुर वाणी में कहाः हे नारद ! सत्संग की महिमा का वर्णन करने में तो वाणी की गति नहीं है। " फिर क्षण भर रूककर श्री भगवान बोलेः "हाँ, यहाँ से तुम आगे जाओ। वहाँ इमली के पेड़ पर एक बड़ा विचित्र, रंगीन गिरगिट है, वह सत्संग की महिमा जानता है। उसी से पूछ लो।"

देवर्षि खुशी-खुशी इमली के पेड़ के पास गये और योगविद्या के बल से गिरगिट से बातें करने लगे। उन्होंने गिरगिट से पूछाः "सत्संग की महिमा क्या है ? कृपया बतलाइये।"

सवाल सुनते ही वह गिरगिट पेड़ से नीचे गिर गया और छटपटाते हुए प्राण छोड़ दिये। नारदजी को बड़ा अचंभा हुआ। वे डरकर लौट आये और भगवान को सारा वृत्तान्त कह सुनाया। भगवान ने मुस्कराते हुए कहाः "अच्छा, नगर के उस धनवान के घर जाओ और वहाँ जो तोता पिंजरे में दिखेगा, उसी से सत्संग की महिमा पूछ लेना।"

नारदजी क्षण भर में वहाँ पहुँच गये एवं तोते से वही सवाल पूछा, मगर देवर्षि के देखते ही देखते उसने आँखें मूंद लीं और उसके भी प्राणपखेरू उड़ गये। अब तो नारद जी बड़े घबरा गये।

वे तुरंत भगवान के पास लौट आये और कहने लगेः "यह क्या लीला है भगवन् ! क्या सत्संग का नाम सुनकर मरना ही सत्संग की महिमा है ?"

श्री भगवान हँसकर बोलेः "वत्स ! इसका मर्म भी तुमको समझ में आ जायेगा। इस बार नगर के राजा के महल में जाओ और उसके नवजात पुत्र से अपना प्रश्न पूछो।"

नारदजी तो थरथर काँपने लगे और बोलेः "हे प्रभु ! अब तक तो बच गया लेकिन अब की बार तो लगता है मुझे ही मरना पड़ेगा। अगर वह नवजात राजपुत्र मर गया तो राजा मुझे जिंदा नहीं छोड़ेगा।"

भगवान ने नारदजी को अभयदान दिया। नारदजी दिल मुट्ठी में रखकर राजमहल में आये। वहाँ उनका बड़ा सत्कार किया गया। अब तक राजा को कोई संतान नहीं थी। अतः पुत्र के जन्म पर बड़े आनन्दोल्लास से उत्सव मनाया जा रहा था। नारदजी ने डरते-डरते राजा से पुत्र के बारे में पूछा।

नारदजी को राजपुत्र के पास ले जाया गया। पसीने से तर होते हुए, मन-ही-मन श्रीहरि का नाम लेते हुए नारदजी ने राजपुत्र से सत्संग की महिमा के बारे में प्रश्न किया तो वह नवजात शिशु हँस पड़ा और बोलाः "महाराज ! चंदन को अपनी सुगंध और अमृत को अपने माधुर्य का पता नहीं होता। ऐसे ही आप अपनी महिमा नहीं जानते इसलिए मुझसे पूछ रहे हैं। वास्तव में आप ही के क्षणमात्र के संग से मैं गिरगिट की योनि से मुक्त हो गया और आप ही के दर्शनमात्र से तोते की क्षुद्र योनि से मुक्त होकर इस मनुष्य जन्म को पा सका। आपके सान्निध्यमात्र से मेरी कितनी सारी योनियाँ कट गयीं और मैं सीधे मानव-तन में पहुँच गया, राजपुत्र बना। यह सत्संग का कितना अदभुत प्रभाव है ! हे ऋषिवर ! अब मुझे आशीर्वाद दें कि मैं मनुष्य जन्म के परम लक्ष्य को पा लूँ।"

नारदजी ने खुशी-खुशी आशीर्वाद दिया और भगवान श्री हरि के पास जाकर सब कुछ बता दिया।

श्रीहरि बोलेः "सचमुच, सत्संग की बड़ी महिमा है। संत का सही गौरव या तो संत जानते हैं या उनके सच्चे प्रेमी भक्त !"

क्या यह अमृतमय कथा पढ़कर आपका हृदय पावन नहीं हुआ ? क्या आपके मन में प्रभुप्रेम के पुष्प नहीं खिले ? क्या भक्तिरस का मकरंद आपने नहीं चखा ? संतों का सान्निध्य तो महाकल्याणकारी होता ही है किंतु अगर हमारी ओर से पूर्ण तत्परता, पूर्ण शरणागति हो एवं मोक्ष पाने की तीव्र ललक हो तो उसका प्रभाव और भी बढ़ जाता है तथा शीघ्र फल देता है। सदाचरण के साथ निर्मल बुद्धि भी हो तो सत्संग का प्रभाव शुद्ध भक्ति को जगा देता है और फिर भक्त भगवान में ही लीन हो जाता है, पूर्णता को पा लेता है।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

क्या जादू है तेरे प्यार में !

किसी गाँव में एक चोर रहता था। एक बार उसे कई दिनों तक चोरी करने का अवसर ही नहीं मिला, जिससे उसके घर में खाने के लाले पड़ गये। अब मरता क्या न करता, वह रात्रि के लगभग बारह बजे गाँव के बाहर बनी एक साधु की कुटिया में घुस गया। वह जानता था कि साधु बड़े त्यागी हैं, अपने पास कुछ नहीं रखते फिर भी सोचा, 'खाने पीने को ही कुछ मिल जायेगा। तो एक दो दिन का गुजारा चल जायेगा।'

जब चोर कुटिया में प्रवेश कर रहे थे, संयोगवश उसी समय साधु बाबा ध्यान से उठकर लघुशंका के निमित्त बाहर निकले। चोर से उनका सामना हो गया। साधु उसे देखकर पहचान गये क्योंकि पहले कई बार देखा था, पर साधु यह नहीं जानते थे कि वह चोर है। उन्हें आश्चर्य हुआ कि यह आधी रात को यहाँ क्यों आया ! साधु ने बड़े प्रेम से पूछाः "कहो बालक ! आधी रात को कैसे कष्ट किया ? कुछ काम है क्या ?"

चोर बोलाः "महाराज ! मैं दिन भर का भूखा हूँ।"

साधुः "ठीक है, आओ बैठो। मैंने शाम को धूनी में कुछ शकरकंद डाले थे, वे भुन गये होंगे, निकाल देता हूँ। तुम्हारा पेट भर जायेगा। शाम को आ गये होते तो जो था हम दोनों मिलकर खा लेते। पेट का क्या है बेटा ! अगर मन में संतोष हो तो जितना मिले उसमें ही मनुष्य खुश रह सकता है। 'यथा लाभ संतोष' यही तो है।"

साधु ने दीपक जलाया। चोर को बैठने के लिए आसन दिया, पानी दिया और एक पत्ते पर भुने हुए शकरकंद रख दिये। फिर पास में बैठकर उसे इस तरह खिलाया, जैसे कोई माँ अपने बच्चे को खिलाती है। साधु बाबा के सदव्यवहार से चोर निहाल हो गया, सोचने लगा, 'एक मैं हूँ और एक ये बाबा हैं। मैं चोरी करने आया और ये इतने प्यार से खिला रहे हैं ! मनुष्य ये भी हैं और मैं भी हूँ। यह भी सच कहा हैः आदमी-आदमी में अंतर, कोई हीरा कोई कंकर। मैं तो इनके सामने कंकर से भी बदतर हूँ।'

मनुष्य में बुरी के साथ भली वृत्तियाँ भी रहती हैं, जो समय पाकर जाग उठती हैं। जैसे उचित खाद-पानी पाकर बीज पनप जाता है, वैसे ही संत का संग पाकर मनुष्य की सदवृत्तियाँ लहलहा उठती हैं। चोर के मन के सारे कुसंस्कार हवा हो गये। उसे संत के दर्शन, सान्निध्य और अमृतवर्षा दृष्टि का लाभ मिला।

एक घड़ी आधी घड़ी, आधी में पुनि आध।
तुलसी संगत साध की, हरे कोटि अपराध।।

उन ब्रह्मनिष्ठ साधुपुरुष के आधे घंटे के समागम से चोर के कितने ही मलिन संस्कार नष्ट हो गये। साधु के सामने अपना अपराध कबूल करने को उसका मन उतावला हो उठा। फिर उसे लगा कि 'साधु बाबा को पता चलेगा कि मैं चोरी की नियत से आया था तो उनकी नजर में मेरी क्या इज्जत रह जायेगी ! क्या सोचेंगे बाबा कि कैसा पतित प्राणी है, जो मुझ संत के यहाँ चोरी करने आया !' लेकिन फिर सोचा, 'साधु मन में चाहे जो समझें, मैं तो इनके सामने अपना अपराध स्वीकार करके प्रायश्चित करूँगा। इतने दयालू महापुरुष हैं, ये मेरा अपराध अवश्य क्षमा कर देंगे।' संत के सामने प्रायश्चित करने से सारे पाप जलकर राख हो जाते हैं।

उसका भोजन पूरा होने के बाद साधु ने कहाः "बेटा ! अब इतनी रात में तुम कहाँ जाओगे, मेरे पास एक चटाई है, इसे ले लो और आराम से यहाँ सो जाओ। सुबह चले जाना।"

नेकी की मार से चोर दबा जा रहा था। वह साधु के पैरों पर गिर पड़ा और फूट-फूट कर रोने लगा। साधु समझ न सके कि यह क्या हुआ ! साधु ने उसे प्रेमपूर्वक उठाया, प्रेम से सिर पर हाथ फेरते हुए पूछाः "बेटा ! क्या हुआ ?"

रोते-रोते चोर का गला रूँध गया। उसने बड़ी कठिनाई से अपने को सँभालकर कहाः "महाराज ! मैं बड़ा अपराधी हूँ।"

साधु बोलेः "बेटा ! भगवान तो सबके अपराध क्षमा करने वाले हैं। उनकी शरण में जाने से वे बड़े-से-बड़े अपराध क्षमा कर देते हैं। तू उन्हीं की शरण में जा।"

चोरः "महाराज ! मेरे जैसे पापी का उद्धार नहीं हो सकता।"

साधुः "अरे पगले ! भगवान ने कहा हैः यदि कोई अतिशय दुराचारी भी अनन्य भाव से मेरा भक्त होकर मुझको भजता है तो वह साधु ही मानने योग्य है।"

"नहीं महाराज ! मैंने बड़ी चोरियाँ की हैं। आज भी मैं भूख से व्याकुल होकर आपके यहाँ चोरी करने आया था लेकिन आपके सदव्यवहार ने तो मेरा जीवन ही पलट दिया। आज मैं आपके सामने कसम खाता हूँ कि आगे कभी चोरी नहीं करूँगा, किसी जीव को नहीं सताऊँगा। आप मुझे अपनी शरण में लेकर अपना शिष्य बना लीजिये।"

साधु के प्यार के जादू ने चोर को साधु बना दिया। उसने अपना पूरा जीवन उन साधु के चरणों में सदा के समर्पित करके अमूल्य मानव जीवन को अमूल्य-से-अमूल्य परमात्मा को पाने के रास्ते लगा दिया।

महापुरुषों की सीख है कि "आप सबसे आत्मवत् व्यवहार करें क्योंकि सुखी जीवन के लिए विशुद्ध निःस्वार्थ प्रेम ही असली खुराक है। संसार इसी की भूख से मर रहा है, अतः प्रेम का वितरण करो। अपने हृदय के आत्मिक प्रेम को हृदय में ही मत छिपा रखो। उदारता के साथ उसे बाँटो, जगत का बहुत-सा दुःख दूर हो जायेगा।"

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

हिंसक बन गया परम भक्त

परब्रह्म परमात्मा के साथ एकत्व के अनुभव को उपलब्ध स्वामी रामतीर्थ देश-विदेश में घूम-घूमकर ब्रह्मविद्या का उपदेश देते थे। बात फरवरी सन् 1902 की है, 'साधारण धर्मसभा, फैजाबाद' के दूसरे वार्षिकोत्सव में स्वामी रामतीर्थ भी पधारे। स्वामी जी तो वेदान्ती थे। 'सबमें ब्रह्म है, सब ब्रह्म में है, सब ब्रह्म है। मैं ब्रह्म हूँ, आप भी ब्रह्म हैं, ब्रह्म के सिवाय कुछ नहीं है।' - इसी सनातन सत्य ज्ञान की पहले दिन उन्होंने व्याख्या की। श्रोताओं में एक सज्जन श्री नौरंगमल भी मौजूद थे। उनके पास एक मौलवी मोहम्मद मुर्तजा अली खाँ भी बैठे थे। नौरंगमल जी ने मौलवी साहब से कहाः "सुनते हो मौलाना ! यह युवक क्या कह रहा है ! कहता है कि मैं खुदा हूँ। " यह सुनकर मौलवी आपे से बाहर हो गये और कहने लगेः "अगर इस वक्त मुसलमानी राज्य होता तो मैं फौरन इस काफिर की गर्दन उड़ा देता। लेकिन अफसोस ! मैं यहाँ मजबूर हूँ।"

दूसरे दिन मौलवी साहब फिर धर्मसभा में गये। वहाँ सुबह का सत्संग चल रहा था। मंडप श्रद्धालुओं से भरा हुआ था। स्वामी रामतीर्थ फारसी में एक भजन गा रहे थे जिसका मतलब थाः "हे नमाजी ! तेरी यह नमाज है कि केवल उठक-बैठक ? अरे, नमाज तो तब है जब ईश्वर के विरह में ऐसा बेचैन और अधीर हो जाय कि न तुझे बैठते चैन मिले और न खड़े होते। असली नमाज तो तभी कहलायेगी, नहीं तो यह केवल कवायद मात्र है।"

स्वामी रामतीर्थ यह भजन बिल्कुल तल्लीन हो कर गा रहे थे और उनकी आँखों से आँसू झर रहे थे। उस समय उनके चेहरे से अलौकिक तेज बरस रहा था। मौलवी साहब स्वामी रामतीर्थ की उस तल्लीनता, भगवत्प्रेम और भगवत्समर्पण से बहुत प्रभावित हुए। भजन समाप्त होते ही मौलवी अपनी जगह से उठे और स्वामी रामतीर्थ के पास पहुँचकर अपने वस्त्रों में छुपाया हुआ एक खंजर (कटार) निकालकर उनके कदमों में रख दिया और बोलेः "हे राम ! आप सचमुच राम है, मैं आज इस वक्त बहुत बुरी नीयत से आपके पास आया था। मैं आपका गुनहगार हूँ। मुझे माफ कर दीजिये। मैं बहुत शर्मिन्दा हूँ।"

स्वामी रामतीर्थ मुस्कराये और बोलेः "क्यों गंदा बंदा बनता है ? जो तू है वही तो मैं हूँ। मैं तुझसे अलग कब हूँ ? जब, आइंदा किसी से भी नफरत मत करना क्योंकि सबके भीतर वही सर्वव्यापी खुदा मौजूद है। हालांकि तू उससे बेखबर है, पर वह तेरी हर बात को जानता है। अपने खयालात पवित्र रख। खुदी को भूल जा और खुदा को याद रख, जो तेरे नजदीक से भी नजदीक है, यानी जो तू खुद है।" - ऐसा कहकर स्वामी जी ने बहुत प्यार से मौलवी के सिर पर हाथ फेरा और मौलवी अपना सिर स्वामी जी के चरणों पर रख बच्चों की तरह रोने लगे। रोते-रोते मौलवी की आँखें लाल हो गयीं। वे किसी प्रकार से भी स्वामी जी के चरण छोड़ नहीं रहे थे। बस, एक ही रट लगा रखी थीः "मुझे माफ कर दीजिये, मुझे माफ कर दीजिये।" बड़ी मुश्किल से उन्हें शांत किया गया। तब से वह मौलवी मुहम्मद मुर्तजा अली खाँ उनका अनन्य भक्त हो गया। उसने अपने आपको स्वामी जी के श्रीचरणों में समर्पित कर दिया और उसका जीवन भक्तिमय हो गया।

ब्रह्मनिष्ठ महापुरुष सभी के आत्मीय स्वजन है। वे किसी को भी अपने से अलग नही देखते और प्राणिमात्र पर अपनी करूणा-कृपा रखते हैं। वे सभी का आत्मोत्थान चाहते हैं। वे हमारे अंतःकरण में भरे कूड़े-कचरे को अपने उपदेशों द्वारा बाहर निकाल फेंकते हैं और हमारे हृदय को निर्मल व पवित्र बना देते हैं। वे हमें जीवन जीने की सही राह दिखाते हैं और जीवन को जीवनदाता भगवान की ओर ले जाते हैं।

स्वामी रामतीर्थ का रसमय जीवन आज भी दिख रहा है - कहीं कोई बापू जी कहता है, कोई साँईं कहता है परंतु अठखेलियाँ वही सच्चिदानंद की.... सभी को हरिनाम के द्वारा अपने ब्रह्मसुख का रस प्रदान करने वाले ऐसे कौन हैं इस समय ? जान गये, मान गये, पहचान गये - स्वामी रामतीर्थ का प्यार, भले नाम बदलकर, वही तो डाँट रहा है !

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

मेटत कठिन कुअंक भाल के

पूज्य बापू जी के सत्संग-प्रवचन से

गुरु नानक देव जी घूमते-घामते किसी नगर के बाहर डेरा डाले हुए थे। भावुक श्रद्धालु लोग दर्शन करने गये। धीरे-धीरे बात राजा तक पहुँची और वह भी दर्शन करने गया। नया-नया राजा था, पहली बार जा रहा था किन्हीं संत के चरणों में।

राजा ने देखा कि नानक जी को सब लोग झुक-झुक के प्रणाम करते हैं, बड़े आदर से निहारते हैं और ये बाबाजी तो सब छोड़ के संत बने हैं। अब इनको लोग नमस्कार प्रणाम करें इसकी क्या जरूरत ! हम लोगों को कोई सलाम कर दे तो ठीक है, हमको जरा मजा भी आये। अब बाबा बन गये, घर-बार छोड़ दिया फिर प्रणाम करवाने की क्या जरूरत ! राजा के चित्त में संकल्प-विकल्प होते रहे।

नानकदेव तो नानक देव थे। पूछाः

"क्या सोचता है भैया ?"

राजा बोलाः "बाबाजी ! गुस्ताफी माफ हो..." और राजा ने सारी बात कह दी।

नानक देव ने कहाः "अभी नहीं कहूँगा। कल सुबह आना।"

राजा अपने महल में चला गया, खाया-पिया और सोया। सौ जाने पर सपना देखता है कि वह जंगल में शिकार करने गया। एक बढ़िया हिरन दिखा, उसके पीछे घोड़ा भगाये जा रहा है। हिरन हवा को गया। राजा साथियों से, मित्रों से जुदा हो गया और ऐसी जगह पर पहुँचा कि जहाँ कोई रास्ता ही नहीं मिलता। भूखा-प्यासा राजा भटक रहा है। जामुन का रस और चावल लिये एक चांडाली जा रही है। राजा चांडाली के आगे गिड़गिड़ाता हैः 'तू मुझे भोजन दे दे।'

चांडाली बोलती हैः 'हम लोग चांडाल हैं। बिना स्वार्थ के किसी से प्रीति नहीं करते। तुम मेरे भर्ता हो जाओ तो मैं तुम्हें खिलाऊँ।'

जो स्वार्थी होते हैं, जो चांडाल मन के होते हैं वे बिना मतलब किसी का उपकार नहीं करते और जो संत होते हैं वे कोई मतलब रखे बिना उपकार करते हैं। भूखा मरता हुआ राजा चांडाली के साथ हो गया। उसे छः-सात बच्चे हुए। दिन को तो पशुओं की हिंसा करे, रक्तपान करे, रात्रि को चर्म सुखाये। ऐसा जीवन बिताते-बिताते उसे बारह वर्ष बीत गये।

दुष्काल के दिन हैं। बारिश कम पड़ी है, तालाब सूख गया है। जानवर नहीं मिल रहे हैं। दो दिन-चार दिन तक कोई शिकार नहीं मिलता है। चांडाल बड़ा दुःखी होता है। घर जाता है तो बच्चे बोलते हैं- 'लाओ मांस।'

चांडाल बोलता हैः 'मांस नहीं है। मेरा ही मांस खा लो। ' छोटा बच्चा बोलता हैः 'तुम्हारा ही दे दो।'

चांडाल के बच्चे भी चांडाल ! गुस्से में उस चांडाल ने अपना शरीर जलाने के लिए लकड़ियाँ इकट्ठी कीं, आग लगायी और उस आग में आत्महत्या करने के लिए ज्यों कूदा तो राजा पलंग से नीचे गिर पड़ा, आँख खुल गयी और धड़कन बढ़ गयी। देखा कि 'अरे ! मैं तो

महल में सोया हूँ। शास्त्रों में लिखा है कि संत के दर्शन करने से दुःख दूर होते हैं। ऐसा मैंने सुर रखा है परंतु हुआ उलटा ! नानकजी के दर्शन किये और रात हराम हो गयी ! इतने दिन तो बड़े मधुर सपने देखे पर इस रात खुद के चांडाल होने के बारह वर्ष जो देखे हैं, बड़े जुल्म के, बड़े बुरे देखे।'

ब्रहम गिआनी का दरसु बडभागी पाईये।

ब्रहम गिआनी कउ बलि बलि जाईये।

ब्रहम गिआनी की मिति कउनु बखानै।

ब्रहम गिआनी की गति ब्रहम गिआनी जानै।

चारि पदारथ जे को मागै। साध जना की सेवा लागै।

जे को आपुना दूखु मिटावै। हरि हरि नामु रिदै सद गावै।

जे को जनम मरण ते डरै। साध जना की सरनी परै।

(सुखमनी साहिब)

राजा सुबह होते ही नहा-धो के गुरु नानक के पास पहुँच गया। बोलाः "बाबाजी ! मेरी रात क्यों खराब हो गयी ? आपके दर्शन के बाद तो आदमी को तसल्ली से सोना चाहिए पर मेरी नींद हराम हो गयी। मैंने बड़ी बुरी तरह का सपना देखा।"

नानक देव जी बोलते हैं- "क्या सपना देखा, मैं बता देता हूँ तुझे।" और नानक जी ने सारी बात बताते हुए कहाः "राजा का फर्ज होता है प्रजा का पालन करना। इसके लिए प्रजा से कर (Tax) लिया जाता है, प्रजा का खून-पसीना लिया जाता है। उसकी रक्षा, उसके हित के लिए तूने खून-पसीना तो नोचा परंतु प्रजा के उस खून को प्रजा के उपयोग में न लगाकर तूने उससे विलास किया है। इसलिए दूसरा जन्म तुझे चांडाल का मिलने वाला था, परंतु संत से पास आया तो वह संत के सान्निध्य और दर्शन से सपने में पूरा हो गया।"

अभी जीव विज्ञान की घोषणा है कि सज्जन आदमी, प्रेम से भरा हुआ, करूणा से भरा हुआ, शांति से भरा हुआ, परोपकार से भरा हुआ सत्पुरुष जब किसी बीमार व्यक्ति को निहारता है तो उसकी आँखों की रश्मियाँ, आँखों की आभा पड़ने से बीमार व्यक्ति के अंदर स्वास्थ्य सर्जन करने वाले रक्त के श्वेत कण प्रत्येक घन मि.मी. रक्त में 1500 की संख्या से बढ़ जाते हैं और दुष्ट आदमी जब निगाह डालता है तो प्रति घन मि.मी. रक्त में 1600 श्वेत कण नष्ट हो जाते हैं। अभी विज्ञान सिद्ध करता है पर नानकजी, कबीर जी, लीलाशाहबापूजी आदि महापुरुषों ने सैंकड़ों वर्ष पहले घोषणा कर दी।

नूरानी नजर सां दिलबर दरवेशन

मुं खे निहाल करे छड्यो।

(नूरानी नजरों से दिलबर दरवेश ने मुझे निहाल कर दिया है।)

उनकी निगाहों से स्थूल कणों में तो परिवर्तन होता है किंतु उनके सम्पर्क से सूक्ष्म मन में भी परिवर्तन हो जाता है। कोई नर्तकी आ जाय, कोई अभिनेता आ जाय तो उसको देखकर मन में जो भाव पैदा होते हैं - उसे सब जानते हैं कि कितने चंचल, हलकट, विकारी

भाव उत्पन्न होते हैं और यदि कोई किन्हीं संत के, नानकजी, कबीर जी या लीलाशाहजी बापू के चित्र ही देख ले उनको देखने का तो सौभाग्य न मिला परंतु उनके सुमिरन व उनके चित्र को देखने से सदभाव व शांति आ जाती है। ऐसे ज्ञानवानों के कारण दुनिया में थोड़ी रौनक है, थोड़ी ईमानदारी है। थोड़ा प्रेम और प्रसन्नता दिख रही है सत्पुरुषों के कारण। ऐसे पुरुष बोलें तो बढ़िया है, मिलें तो बढ़िया है, नहीं तो जहाँ भी रहते हैं उनका भजन-ध्यान और ईश्वर के साथ एकता बड़ा मंगलकारी प्रभाव डालती है। हमारे राष्ट्र पर उनकी बड़ी-बड़ी करूणा और कृपा है। ऐसे लोगों के लिए फकीर बोलते हैं-

गुरु जी तुम तसल्ली न दो,
सिर्फ बैठे ही रहो महफिल का रंग बदल जायेगा,
गिरता हुआ दिल भी सँभल जायेगा।।

'श्रीरामचरित मानस' में संत तुलसी दास जी भगवान शिवजी की वाणी उच्चारते हैं-

गिरिजा संत समागम सम न लाभ कछु आन।
बिनु हरि कृपा न होई सो गावहिं बेद पुरान।।
एक घड़ी आधी घड़ी, आधी में पुनि आध।
तुलसी संगत साध की, हरे कोटि अपराध।।

(श्रीरामचरित. उ.कां. 125 ख)

राजा ने आधी घड़ी, चौथाई घड़ी संत के दर्शन किये तो चांडाल के जन्म से बचाव हो गया। कबीर जी अपनी भाषा में कहते हैं-

सुख देवें दुःख को हरें, करें पाप का अंत।
कह कबीर वे कब मिलें, परम सनेही संत।।

हम लोगों का स्नेह तो शरीर में हो सकता है, नाटक आदि में हो सकता है लेकिन फकीरी का स्नेह तो परमात्मा में होता है। जिनका परम में स्नेह है ऐसे लोग जब मिलते हैं तो दुःख दूर होते हैं, आदमी पाप से विमुक्त होता है।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

तत्त्वज्ञ महापुरुष दुर्लभ

एक बार युधिष्ठिर, अर्जुन और भगवान श्रीकृष्ण वन में घूमते-घूमते एक योगी संत के पास पहुँचे। वहाँ वे थोड़ी देर बैठे। युधिष्ठिर अचानक रोने लगे। साथ ही वे संत, श्रीकृष्ण एवं अर्जुन भी रोने लगे और खूब रोये। भगवान ने अर्जुन से पूछाः "तुम क्यों रोये ?"

अर्जुन बोलेः "भगवान ! मैं तो आप सबको रोते देखकर रोया परंतु आप लोग क्यों रोये ?"

भगवान ने योगिराज से रोने का कारण बताने की विनती की तो वे बोलेः "मैंने घर छोड़ा, संबंधी छोड़े, देश छोड़ा, इतने घने एकांत में विकारों और वासनाओं के प्रभाव से बचकर मन-इन्द्रिय से पार अपने परमात्म स्वभाव में, ब्रह्म स्वभाव में आत्मा का आनंद लेने यहाँ

आया परंतु मैंने ऐसे कौन-से पापकर्म किये हुए हैं कि इतना करने पर भी एकांत में मेरे आनंद को भंग करने युधिष्ठिर जैसे प्रसिद्ध राजा आ पहुँचे हैं, यह सोचकर मुझे रोना आ गया।"

युधिष्ठिर से पूछा तो वे बोलेः "मुझे पुण्यभूमि भारत में दुर्लभ मनुष्य जन्म मिला, श्रेष्ठ बुद्धि मिली, राज्यपद मिला। उसका उपयोग तुच्छ राजकार्य में ही होता है। मैं अपने अमूल्य जीवन का उपयोग ऐसे त्यागी महापुरुषों के दर्शन तक मैं नहीं कर पाता, उनका सान्निध्य नहीं ले पाता। कैसा मेरा दुर्भाग्य है ! यही विचारकर मैं रोया।"

फिर कुछ रूककर युधिष्ठिर ने पूछाः "हम तो रोये परंतु भगवान आप तो त्रिलोकीनाथ हैं, आप क्यों रोये ?"

श्रीकृष्ण बोलेः "मुझे इसलिए रोना आया कि अब कलिकाल आयेगा। कलिकाल में तो ऐसे ब्रह्मानंद में रहने वाले महात्मा मिलने दुर्लभ होंगे और उनकी महिमा जानने वाले ऐसे महान धर्मात्मा राजा भी दुर्लभ होंगे - यही विचारकर रोना आता है।"

ऐसे सच्चे संत संसार से दूर रहना चाहते हैं क्योंकि उनके पास लोग नश्वर और तुच्छ वस्तुओं की माँग करते हैं। यह ऐसा है जैसे किसी जौहरी के पास देने के लिए हीरे जवाहरात और सोना-चाँदी है, कोई उससे चार पैसे की सेव, गाँठिया और चटनी की माँग करे। यदि उनके (संत के) पास आत्मज्ञान के लिए आये तो अलग बात है। ऐसे संत ब्रह्मसुख देना चाहते हैं लेकिन लोग 'तू-तेरे' की, 'मैं-मेरे' की बातों में उनका समय खा जाते हैं।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

जगत को तीर्थरूप बनाने वाले संत

दो संन्यासी युवक यात्रा करते-करते किसी गाँव में पहुँचे। लोगों से पूछाः "हमें एक रात्रि यहाँ रहना है। किसी पवित्र परिवार का घर दिखाओ। " लोगों ने बताया कि "वह एक चाचा का घर है। साधु-महात्माओं का आदर सत्कार करते हैं। 'अखिल ब्रह्माण्डमां एक तुं श्रीहरि' का पाठ उनका पक्का हो गया है। वहाँ आपको ठीक रहेगा। " उन्होंने उन सज्जन चाचा का पता बताया।

दोनों संन्यासी वहाँ गये। चाचा ने प्रेम से सत्कार किया, भोजन कराया और रात्रि-विश्राम के लिए बिछौना दिया। रात्रि को कथा-वार्ता के दौरान एक संन्यासी ने प्रश्न कियाःक

"आपने कितने तीर्थों में स्नान किया है ? कितनी तीर्थयात्राएँ की हैं। ? हमने तो चारों धाम की तीन-तीन बार यात्रा की है।"

चाचा ने कहाः "मैंने एक भी तीर्थ का दर्शन या स्नान नहीं किया है। यहीं रहकर भगवान का भजन करता हूँ और आप जैसे भगवत्स्वरूप अतिथि पधारते हैं तो सेवा करने का मौका पा लेता हूँ। अभी तक कहीं भी नहीं गया हूँ।"

दोनों संन्यासी आपस में विचार करने लगेः "ऐसे व्यक्ति का अन्न खाया ! अब यहाँ से चले जायें तो रात्रि कहाँ बितायेंगे ? यकायक चले जायें तो उसको दुःख भी होगा। चलो, कैसे

भी करके इस विचित्र वृद्ध के यहाँ रात्रि बिता दें। जिसने एक भी तीर्थ नहीं किया उसका अन्न खा लिया, हाय !" आदि-आदि। इस प्रकार विचारते हुए वे सोने लगे लेकिन नींद कैसे आवे ! करवटें बदलते-बदलते मध्यरात्रि हुई। इतने में द्वार से बाहर देखा तो गौ के गोबर से लीपे हुए बरामदे में एक काली गाय आयी.... फिर दूसरी आयी.... तीसरी, चौथी.... पाँचवीं... ऐसा करते-करते कई गायें आयीं। हरेक गाय वहाँ आती, बरामदे में लोटपोट होती और सफेद हो जाती तब अदृश्य हो जाती। ऐसी कितनी ही काली गायें आयीं और सफेद होकर विदा हो गयीं। दोनों संन्यासी फटी आँखों से देखते ही रह गये। वे दंग रह गये कि यह क्या कौतुक हो रहा है !

आखिरी गाय जाने की तैयारी में थी तो उन्होंने उसे प्रणाम करके पूछाः

"हे गौ माता ! आप कौन हो और यहाँ कैसे आना हुआ ? यहाँ आकर आप श्वेतवर्ण हो जाती हो इसमें क्या रहस्य है ? कृपा करके आपका परिचय दें।"

गाय बोलने लगीः "हम गायों के रूप में सब तीर्थ हैं। लोग हममें गंगे हर... यमुने हर.... नर्मदे हर... आदि बोलकर गोता लगाते हैं। हममें अपने पाप धोकर पुण्यात्मा होकर जाते हैं और हम उनके पापों की कालिमा मिटाने के लिए द्वन्द्व-मोह से विनिर्मुक्त आत्मज्ञानी, आत्मा-परमात्मा में विश्रान्ति पाये हुए सत्पुरूषों के आँगन में आकर पवित्र हो जाते हैं। हमारा काला बदन पुनः श्वेत हो जाता है। तुम लोग जिनको अशिक्षित, गँवार, बूढ़ा समझते हो वे बुजुर्ग तो जहाँ से तमाम विद्याएँ निकलती हैं उस आत्मदेव में विश्रान्ति पाये हुए आत्मवेत्ता संत हैं।"

तीर्थी कुर्वन्ति जगतीं.... ऐसे आत्मारामी ब्रह्मवेत्ता महापुरुष जगत को तीर्थरूप बना देते हैं। अपनी दृष्टि से, संकल्प से, संग से जन-साधारण को उन्नत कर देते हैं। ऐसे पुरुष जहाँ ठहरते हैं, उस जगह को भी तीर्थ बना देते हैं। जैन धर्म ने ऐसे पुरुषों को तीर्थंकर (तीर्थ बनाने वाले) कहा है।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

अनमोल है सत्संग !

'मानव सेवा संघ' के संस्थापक स्वामी शरणानंद जी से किसी ने पूछाः "आप सत्संग-समारोह तो करते हैं परंतु उस पर इतना खर्चा ! आपको सत्संग-समारोह बहुत ही सादगी के साथ करना चाहिए।"

शरणानंदजी ने कहाः "मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि इतने खर्चे के बाद अगर एक भी भाई के जीवन में, एक भी बहन के जीवन में जीवन की वास्तविक माँग जागृत हो जाये तो उस पर सारे विश्व की सम्पत्ति न्योछावर कर देना भी कम है। आपने सत्संग का महत्त्व नहीं समझा है। सत्संग के लिए हँसते-हँसते प्राण भी दिये जा सकते हैं। सत्संग के लिए क्या नहीं दिया जा सकता ! आप यह सोचें कि सत्संग जीवन की कितनी आवश्यक वस्तु है।

अगर आपके जीवन में सफलता होगी तो वह सत्संग से ही होगी। अगर जीवन में असफलता है तो वह असत् के संग से है।"

उक्त प्रश्न वे ही कर सकते हैं जिनको सत्संग के मूल्य का पता नहीं है, जिनकी मति-गति भोगों से भटकी हुई है।

अगर दुनिया की सब सम्पत्ति खर्च करके भी सत्संग मिलता है तो भी सस्ता है। सत्संग से जो सुधार होता है, वह कुसंग से थोड़े ही होगा ! सत्संग से जो सन्मति मिलती है वह भोग संग्रह से थोड़े ही मिलेगी !

लाखों रूपये खर्च किये, व्यक्ति को पढ़ा दिया, डॉक्टर, बैरिस्टर बना दिया लेकिन सत्संग नहीं मिला तो बचा सकेगा अपने को कुसंग से ?... नहीं।

सत्संग व्यक्ति को भोग-संग्रह से बचाकर आंतरिक सुख का एहसास कराता है।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

।। संत मिलन को जाइये ।।

कबीर सोई दिन भला जा दिन साधु मिलाय।
अंक भरै भरि भेंटिये पाप शरीरां जाय।।1।।
कबीर दरशन साधु के बड़े भाग दरशाय।
जो होवे सूली सजा काटै ई टरी जाय।।2।।
दरशन कीजै साधु का दिन में कई कई बार।
आसोजा का मेह ज्यों बहुत करै उपकार।।3।।
कई बार नहीं कर सकै दोय बखत करि लेय।
कबीर साधु दरस ते काल दगा नहीं देय।।4।।
दोय बखत नहीं कर सकै दिन मे करू इक बार।
कबीर साधु दरस ते उतरै भौ जल पार।।5।।
दूजै दिन नहीं करि सकै तीजै दिन करू जाय।
कबीर साधु दरस ते मोक्ष मुक्ति फल पाय।।6।।
तीजै चौथे नहीं करै सातैं दिन करू जाय।
या में विलंब न कीजिये कहै कबीर समुझाय।।7।।
सातैं दिन नहीं करि सकै पाख पाख करि लेय।
कहै कबीर सो भक्तजन जनम सुफल करि लेय।।8।।
पाख पाख नहीं करि सकै मास मास करू जाय।
ता में देर न लाइये कहै कबीर समुझाय।।9।।
मात-पिता सुत इस्तरी आलस बंधु कानि।
साधु दरस को जब चलै ये अटकावै खानि।।10।।
इन अटकाया ना रहै साधु दरस को जाय।

कबीर सोई संतजन मोक्ष मुक्ति फल पाय।।11।।
साधु चलत रो दीजिये कीजै अति सनमान।
कहै कबीर कछु भेंट धरूँ अपने बित अनुमान।।12।।
तरूवर सरोवर संतजन चौथा बरसे मेह।
परमारथ के कारणे चारों धरिया देह।।13।।
संत मिलन को जाइये तजी मोह माया अभिमान।
ज्यों ज्यों पग आगे धरे कोटि यज्ञ समान।।14।।
तुलसी इस संसार में भाँति भाँति के लोग।
हिलिये मिलिये प्रेम सों नदी नाव संयोग।।15।।
चल स्वरूप जोबन सुचल चल वैभव चल देह।
चलाचली के वक्त में भलाभली कर लेह।।16।।
सुखी सुखी हम सब कहें सुखमय जानत नाँही।
सुख स्वरूप आतम अमर जो जाने सुख पाँहि।।17।।
सुमिरन ऐसा कीजिये खरे निशाने चोट।
मन ईश्वर में लीन हो हले न जिह्वा होठ।।18।।
दुनिया कहे मैं दुरंगि पल में पलटी जाऊँख।
सुख में जो सोये रहे वा को दुःखी बनाऊँ।।19।।
माला श्वासोच्छवास की भगत जगत के बीच।
जो फेरे सो गुरुमुखी ना फेरे सो नीच।।20।।
अरब खरब लों धन मिले उदय अस्त लों राज।
तुलसी हरि के भजन बिन सबे नरक को साज।।21।।
साधु सेव जा घर नहीं सतगुरु पूजा नाँही।
सो घर मरघट जानिये भूत बसै तेहि माँहि।।22।।
निराकार निज रूप है प्रेम प्रीति सों सेव।
जो चाहे आकार को साधु परतछ देव।।23।।
साधु आवत देखि के चरणौ लागौ धाय।
क्या जानौ इस भेष में हरि आपै मिल जाय।।24।।
साधु आव देख करि हसि हमारी देह।
माथा का ग्रह उतरा नैनन बढ़ा सनेह।।25।।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ